सितम्बर, 2018
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

पी एल डी (सी. डी)-9-2018 आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

सितम्बर, 2018 अंक - 9

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
अविनाश शुक्ला

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2018) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

अभी हाल में भारतीय रिजर्व बैंक और भारत सरकार के बीच की तनातनी मीडिया की सुर्खियों का कारण बनी । इसका मुख्य कारण यह है कि बैंकों ने वर्ष 2008 से 2012 के मध्य मात्र चार वर्षों की अवधि में लगभग 52 लाख करोड़ रुपए के कर्ज बांट दिए थे जबकि स्वाधीनता के पश्चात् से वर्ष 2008 तक कुल 18 लाख करोड़ रुपए के कर्ज बांटे गए थे । जब सरकार ने कर्जदारों द्वारा संदेय कर्जों के बाबत आडिट कराया तो ज्ञात हुआ कि एक करोड़ रुपए से अधिक रकम वाले कर्जों में से लगभग 12 लाख करोड़ रुपए के ऋण एन. पी. ए. अर्थात् फंसे हुए कर्जों में तब्दील हो चुके हैं । यदि एक करोड़ रुपए से कम की रकम वाले कर्जों को भी एन. पी. ए. में सम्मिलित किया जाए तो एन. पी. ए. की राशि 25 लाख करोड़ रुपए से भी अधिक हो सकती है । सरकार को संदेह था कि 2008 से 2012 के मध्य बैंकों द्वारा कर्ज के रूप में बांटे गए 52 लाख करोड़ रुपए में से बड़ी रकम मनी लांड्रिंग के जरिए विदेशी बैंकों में भेज दी गई है या काले धन में परिवर्तित करके बैंकिंग प्रणाली से हटा दी गई है । ऐसी स्थिति में सरकार ने नोटबंदी जैसा कड़ा निर्णय लिया । नोटबंदी का परिणाम यह हुआ कि बैंक से ऋण लेने वाली कंपनियों और फर्मों को मजबूरी में विदेशी बैंकों में भेजी गई रकमों और काले धन में परिवर्तित की गई रकमों को फिर से बैंकों के खातों में जमा करना पड़ा । आयकर विभाग ने ऐसे 18 लाख खातों की पहचान की है जिनमें करोड़ों रुपए जमा हुए हैं किन्तु जमाकर्ता यह बताने में असमर्थ हैं कि रकम कहां से आई । अब इन खातों की समीक्षा के पश्चात् ही पता चल पाएगा कि इन खातों में जमा कितनी रकम वैध है और कितनी अवैध । इस बीच सरकार के पास अवसंरचना से संबंधित परियोजनाओं के लिए धन की कमी हो गई और सरकार ने भारतीय रिजर्व के रिजर्व के पास सुरक्षित लगभग साढ़े नौ लाख करोड़ रुपए की निधि में से साढ़े तीन लाख करोड़ रुपए की राशि सरकार को अन्तरित करने की मांग की । यही भारतीय रिजर्व बैंक और सरकार के बीच तनातनी का मुख्य कारण है । भारतीय रिजर्व बैंक का कहना है कि उसके पास जमा रिजर्व राशि के कम होने से रुपए के मूल्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जो अर्थव्यवस्था के लिए घातक सिद्ध होगा । सरकार का कहना है कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा लघु अवधि के लिए रकम अन्तरित

कर देने से रुपए के मूल्य या अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा । सरकार और रिजर्व बैंक के मध्य इस खींचतान के बीच देश की बैंकिंग व्यवस्था को लेकर देश के जनमानस में अनेक प्रकार की आशंकाएं उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।

मेरा विचार है कि हमारा देश शुरू से ही घाटे की वित्त व्यवस्था पर आधारित रहा है । रिजर्व बैंक के पास बाजार में परिचालित करेंसी के मूल्य के मुकाबले 10 प्रतिशत भी स्वर्ण भंडार नहीं है । ऐसी स्थिति में बैंक की रिजर्व राशि में से एक-तिहाई राशि सरकार के खाते में अन्तरित किया जाना उचित कदम नहीं होगा । सरकार के पास समय भी बहुत कम है और आम चुनाव वर्ष 2019 के माह अप्रैल-मई में होने वाले है । ऐसे में सरकार को अवसंरचना परियोजनाओं के प्रयोजनार्थ जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए और उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करके ही अधिक से अधिक कार्य करने का प्रयास करना चाहिए ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपने पत्रिका की गुणवत्ता को सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

सत्यमेव जयते

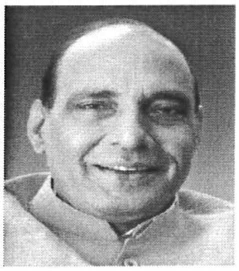

राजनाथ सिंह
RAJNATH SINGH
गृह मंत्री, भारत
HOME MINISTER, INDIA

प्रिय देशवासी बहिनो एवं भाइयो ।

हिंदी दिवस पर आपको मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ ।

भाषा, किसी भी राष्ट्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की संवाहिका होती है और भाषायी एकता से ही राष्ट्र की अखण्डता सुदृढ़ होती है कोई भी देश स्वभाषा के बिना अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को मौलिक रूप से परिभाषित नहीं कर सकता ।

पुरातन काल से 'हिन्दी' हमारे राष्ट्रीय व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती आ रही है और आज वह भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ-साथ भारत के संविधान में वर्णित भावनात्मक एकता को मजबूत करने का भी माध्यम है । हिंदी ने भारतीय संस्कृति से संविधान निर्माण प्रक्रिया तक और पुरातनयुग से स्मार्ट फोन के प्रयोग तक का लंबा सफर तय करते हुए हमारी सामासिकता को अक्षुण्ण रखने में महती भूमिका निभाई है और देशवासियों में अनेकता में एकता की भावना को भी पुष्ट किया है ।

जिस देश के नागरिक अपनी भाषा में सोचें और लिखें, विश्व उस देश को सम्मान की दृष्टि से देखता है । भारत जैसे विशाल, बहुभाषी और प्रजातांत्रिक देश की चहुँमुखी विकास प्रक्रिया में हिंदी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं की भी अहम भूमिका रही है । हमारे देश की सभी भाषाएँ और बोलियाँ हमारी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक धरोहर हैं और इनका प्रयोग एवं प्रचार-प्रसार करना, यह हमारा कर्तव्य है ।

भारतीय संविधान द्वारा दिनांक 14 सितंबर, 1949 को धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परंपराओं को जोड़ने की कड़ी और अधिकांश देशवासियों द्वारा बोली एवं समझी जाने वाली, 'हिंदी भाषा' को 'संघ की राजभाषा' के रूप में चुना गया है । इसके साथ ही, संघ सरकार को यह महत्वपूर्ण दायित्व भी सौंपा गया कि वह अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली एवं पदावली को आत्मसात् करते हुए हिंदी भाषा का विकास करे ताकि वह भारतीय संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके ।

आज कोई भी भाषा कंप्यूटर तथा अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से दूर रह कर जन-मानस से जुड़ी नहीं रह सकती । वर्तमान में डेटाबेस के आधार पर मशीनी अनुवाद के जरिए पूरे विश्व में अनुवाद कार्य किया जा रहा है । केंद्र सरकार के कामकाज में अत्यधिक मात्रा में नियमित आधार पर किए जाने वाले अनुवाद कार्य में लगने वाले अतिशय मानव संसाधन और समय को बचाने के लिए राजभाषा विभाग ने सी-डैक, पुणे की सहायता से 'कंठस्थ' नामक अनुवाद सॉफ्टवेयर भी तैयार किया है । भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने भी एक अभिनव पहल करते हुए 'हिंदी प्रौद्योगिकी संसाधन केंद्र' की स्थापना की है ताकि कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करने के लिए नवीन ई-टूल्स विकसित किए जा सकें ।

निज भाषा के प्रति स्वाभिमान और हिंदी भाषा का समुचित ज्ञान एवं तकनीकी कुशलता ही हिंदी में कार्य करने का मुख्य आधार है । मुझे विश्वास है कि केंद्र सरकार के मंत्रालयों एवं विभागों आदि में इन सॉफ्टवेयरों के अधिकाधिक प्रयोग से द्विभाषीकरण यानि अनुवाद कार्य अपेक्षाकृत सरल होगा और इससे राजभाषा कार्यान्वयन को गति मिलेगी ।

सूचना प्रौद्योगिकी के मौजूदा दौर में हमें हिंदी के विभिन्न ई-टूल्स जैसे यूनिकोड, हिंदी की-बोर्ड, लीला स्वयं हिंदी शिक्षण सॉफ्टवेयर, अनुवाद ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, श्रुतलेखन, ई-महाशब्दकोश आदि का अधिकाधिक प्रयोग सुनिश्चित करना चाहिए ।

मॉरीशस में 18-20 अगस्त, 2018 को आयोजित किए गए 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में भी यह तथ्य उजागर हुआ है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी तेजी से अपनी नई पहचान स्थापित कर रही है । तथापि, पहले हमें राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को वह उच्चतम स्थान दिलाने के लिए कटिबद्ध होना होगा जिसकी वह अधिकारिणी है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे सामूहिक

एवं सार्थक प्रयासों से निकट भविष्य में हमें सकारात्मक परिणाम अवश्य प्राप्त होंगे ।

मेरे प्रिय देशवासियों, हमें हिंदी का प्रचार-प्रसार केवल सरकारी स्तर तक सीमित न रख कर इसे भारत के जन-जन तक ले जाना होगा ताकि सरकार की जन कल्याणकारी योजनाओं का लाभ देश के प्रत्येक नागरिक को मिल सके । साथ ही, हमें न केवल भारत अपितु पूरे विश्व में हिंदी भाषा का प्रकाश फैलाने के लिए अपना योगदान देना होगा ।

हिंदी दिवस के अवसर पर आप सब को पुनः मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ ।

जय हिंद ।

(राजनाथ सिंह)

नई दिल्ली,

14 सितंबर, 2018

सत्यमेव जयते

रविशंकर प्रसाद
RAVI SHANKAR PRASAD

मंत्री
विधि एवं न्याय
और
इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी
भारत सरकार
MINISTER OF
LAW & JUSTICE
and
ELECTRONICS & IT
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

हिंदी दिवस के शुभ अवसर पर आप सभी को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं ।

14 सितंबर हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाने वाला गरिमामय दिवस है । सन् 1949 में इसी दिन हिंदी भारत संघ की राजभाषा बनी तथा संविधान के अनुच्छेद 351 के अंतर्गत हिंदी के प्रचार-प्रसार सहित भारत की सामासिक संस्कृति का विकास करने वाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई ।

आज के सूचना प्रौद्योगिकी तथा इंटरनेट के युग में इसका बढ़ता हुआ प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि यह एक प्रगतिशील भाषा है जो किसी भी पीढ़ी के साथ जुड़ने में सक्षम है । केवल इतना ही नहीं इसकी सरल एवं लचीली प्रकृति के कारण हिंदीतर भाषी लोग भी बड़ी संख्या में इसे अपनाने लगे हैं । आज संपूर्ण देश में हिंदी भाषा में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है । हिंदी में विभिन्न भारतीय भाषाओं के कई शब्दों को आत्मसात् करते हुए सरल हिंदी भाषा का रूप ले लिया है ।

मुझे यह बताते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि विधायी विभाग में 14 सितंबर से 28 सितंबर, 2018 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया जा रहा है । आप सभी इस पखवाड़े में सम्मिलित होकर अपना बहुमूल्य योगदान दें और

अधिक से अधिक सरकारी कार्य राजभाषा हिंदी में करने का संकल्प लें ।

मुझे विश्वास है कि हिंदी की प्रगति में आप लोगों का सामूहिक प्रयास निरंतर बना रहेगा तथा आने वाले दिनों में हिंदी का और अधिक प्रचार एवं विकास होगा और यह नित नए शिखर छुएगी ।

जय हिंद !

नई दिल्ली

14 सितंबर, 2018

(रविशंकर प्रसाद)

Room No. 402, 'A' Wing, Shastri Bhawan, New Delhi-110001. Phone : 23387557, 23384567, 23386615 FAX : 23384241

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

सितम्बर, 2018

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

कमला बाई दानसेना (श्रीमती) और अन्य **बनाम** सुब्रन दानसेना	296
नवीन कुमार **बनाम** हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय और अन्य	400
फखरूद्दीन अली अहमद **बनाम** तबस्सुम फातिमा फखरूद्दीन अली अहमद	342
बलीराम **बनाम** श्रीमती सुमित्रा	372
भजन सिंह **बनाम** नवनिध फाइनेन्स लिमिटेड और अन्य	312
मातुश्री ट्रेडिंग कंपनी, छत्तीसगढ़ **बनाम** डीन (सी. आई. एम. एस.) छत्तीसगढ़ इंस्टीट्यूट आफ़ मेडीकल साइंसिस, हास्पिटल, बिलासपुर और अन्य	304
राजेन्द्र सिंह **बनाम** नांगा **उर्फ** नानक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य	319
रीना देवी (श्रीमती) **बनाम** प्रमोद कुमार	417
सपना (श्रीमती) **बनाम** नीरज खंडेलवाल	381
सुरभि त्रिवेदी (श्रीमती) **बनाम** पुष्कर त्रिवेदी	355
शमीम बेगम **बनाम** वेन्नापूसा चेन्ना रेड्डी और एक अन्य	291

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 24

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 53क – वादी द्वारा वाद-संपत्ति का अरजिस्ट्रीकृत करार – करार के निष्पादन के समय संपूर्ण प्रतिफल का संदाय करके वाद-भूमि का कब्जा लिया जाना – क्रेता द्वारा अपनी ओर से करार का संपूर्णतः अनुपालन – करार में विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कोई विनिर्दिष्ट तारीख या अवधि नियत न की जानी – क्रेता द्वारा युक्तियुक्त समय के भीतर विक्रय विलेख निष्पादन कराने में विफलता – विक्रेता द्वारा अपना निवास स्थान छोड़कर अन्यथा बस जाना – धारा 53क के फायदे के विरुद्ध कोई कानूनी वर्जन सृजित नहीं होता – क्रेता इस धारा का फायदा पाने का हकदार है ।

राजेन्द्र सिंह बनाम **नांगा** उर्फ **नानक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य** 319

– धारा 53क – क्रेता द्वारा वाद-भूमि का अपने हक में करार – करार के निष्पादन के समय वाद-भूमि का कब्जा लिया जाना – कब्जे में हस्तक्षेप के विरुद्ध व्यादेश की ईप्सा – करार के निष्पादन के समय करार को रजिस्ट्रीकृत कराया जाना आवश्यक न होना – वादी-क्रेता करार को व्यादेश की मंजूरी के लिए साक्ष्य में प्रयुक्त कर सकता है – क्रेता व्यादेश का अनुतोष पाने का हकदार है ।

राजेन्द्र सिंह बनाम **नांगा** उर्फ **नानक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य** 319

– धारा 53क – क्रेता द्वारा अपने हक में वाद-भूमि का करार – करार के निष्पादन के समय वाद-भूमि का कब्जा लिया जाना – बाद में अन्य व्यक्ति द्वारा वाद-भूमि का रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख अपने हक में कराया जाना – अन्य व्यक्ति द्वारा पूर्व क्रेता का कब्जा स्वीकार किया जाना – सद्भाविक क्रेता का अभिवाक् – विधिमान्यता –

पृष्ठ संख्या

प्रतिवादी को पूर्व करार की जानकारी साबित होना – पश्चात्वर्ती क्रेता को सद्भाविक क्रेता नहीं माना जा सकता – पश्चात्वर्ती क्रेता धारा 53क के संरक्षण का फायदा पाने का हकदार नहीं है ।

राजेन्द्र सिंह बनाम **नांगा** उर्फ **नानक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य** 319

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8)

– धारा 25 और हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 – धारा 6 – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन – पति और पत्नी द्वारा पृथक्-पृथक् निवास – अवयस्क बच्चों की संरक्षकता – पत्नी द्वारा यह कथन किया जाना कि उसके पास स्वयं के और बच्चों के भरणपोषण और शिक्षा के लिए आय के पर्याप्त साधन नहीं हैं – न्यायालय द्वारा बच्चों के कल्याण के लिए पिता की संरक्षकता दी जानी – माता द्वारा बच्चों से प्रेम और लगाव की दलील दी जानी – माता के प्रेम और लगाव को अवयस्क बच्चों के भविष्य और कल्याण पर अभिभावी नहीं माना जा सकता – पिता को जो बच्चों को बेहतर शिक्षा और भरणपोषण देने की स्थिति में है, अवयस्कों की संरक्षकता दी जानी न्यायोचित है ।

कमला बाई दानसेना (श्रीमती) और अन्य बनाम **सुब्रन दानसेना** 296

– धारा 25 – अवयस्कों की अभिरक्षा के लिए पिता द्वारा आवेदन – नैसर्गिक संरक्षकता – अवयस्कों की अभिरक्षा का विनिश्चय करते समय मात्र पक्षकारों के अधिकारों पर ही नहीं अपितु अवयस्कों के कल्याण और बेहतरी को भी विचार में लिया जाना चाहिए ।

फखरूद्दीन अली अहमद बनाम **तबस्सुम फातिमा फखरूद्दीन अली अहमद** 342

पृष्ठ संख्या

– धारा 25 [सपठित मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के सिद्धांतों की धारा 354(2)] – अवयस्क बच्चों की अभिरक्षा – बच्चे आरंभ से ही माता की देख-भाल में रहना – पुत्र की आयु 7 वर्ष पूरी होने पर पिता द्वारा अभिरक्षा के लिए आवेदन – पिता द्वारा लंबी अवधि तक बच्चों से संपर्क करने का कोई प्रयास न किया जाना – न्यायालय द्वारा बच्चों से पूछे जाने पर बच्चों द्वारा माता के पास रहने की इच्छा व्यक्त करना – माता द्वारा अध्यापक के रूप में सेवारत होने के कारण बच्चों का भरणपोषण करने और शिक्षा प्रदान करने के लिए सक्षम होना – माता बच्चों की अभिरक्षा के लिए हकदार है तथापि, पिता को बच्चों से समय-समय पर मिलने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए ।

फखरूद्दीन अली अहमद बनाम **तबस्सुम फातिमा फखरूद्दीन अली अहमद** 342

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 और 299 – आयुर्विज्ञान संबंधी वस्तुओं के प्रदाय के लिए निविदा – तकनीकी बोली लगाने वाली कंपनी द्वारा निविदा में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों को स्वीकार करते हुए प्रदाय के लिए भिन्न समयावधि की प्रस्थापना – कंपनी को सूचित किए बिना निविदा खोलने की तारीख़ में परिवर्तन – कंपनी द्वारा यह साबित करने में असमर्थ रहना कि तारीख के परिवर्तन से उसे कोई नुकसान हुआ है – तकनीकी बोली खोलने की तारीख में परिवर्तन करना मनमाना और अनुचित नहीं कहा जा सकता ।

मातुश्री ट्रेडिंग कंपनी, छत्तीसगढ़ बनाम **डीन (सी. आई. एम. एस.) छत्तीसगढ़ इंस्टीट्यूट आफ़ मेडीकल साइंसिस, हास्पिटल, बिलासपुर और अन्य** 304

पृष्ठ संख्या

— अनुच्छेद 226 — परमादेश रिट-प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा परीक्षा का आयोजन — याची द्वारा परीक्षा में उपस्थित होना — याची के उत्तीर्ण होने के बावजूद उसे प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा अनुपस्थित दिखाया जाना — यह सुस्थापित है कि यदि छात्र परीक्षा में उपस्थित होकर अंक प्राप्त करके उत्तीर्ण हो जाता है तो उसे अनुपस्थित नहीं दिखाया जा सकता — इस दौरान तेरह वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाना और पाठ्यक्रम बदल जाना — याची को परीक्षा में दोबारा बैठने का अवसर दिया जाना और मानसिक पीड़ा, शारीरिक उत्पीड़न, यातना, वित्तीय हानि इत्यादि के लिए प्रतिकर का संदाय करने के लिए निर्देशित किया जाना युक्तिसंगत होगा ।

नवीन कुमार बनाम **हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय और अन्य** 400

— अनुच्छेद 299 — आयुर्विज्ञान संबंधी वस्तुओं के प्रदाय के लिए निविदा — निविदा प्रस्तुत करने के लिए निबंधन और शर्तें — निबंधनों और शर्तों के अनुसार वस्तुओं के प्रदाय के लिए 21 दिन की अवधि की शर्त — निविदा करने वाली कंपनी द्वारा अपनी शर्त अधिरोपित करते हुए प्रदाय का समय 4 से 6 सप्ताह उल्लिखित किया जाना — निविदा जारी करने वाले प्राधिकारी द्वारा कंपनी की निविदा खारिज किया जाना — कंपनी द्वारा इस संबंध में कभी भी कोई शिकायत फाइल न की जानी — चूंकि कंपनी द्वारा प्रदाय के लिए उल्लिखित अवधि निविदा के निबंधनों और शर्तों के भंग में है — अतः निविदा की खारिजी को अन्यायोचित नहीं कहा जा सकता ।

मातुश्री ट्रेडिंग कंपनी, छत्तीसगढ़ बनाम **डीन (सी. आई. एम. एस.) छत्तीसगढ़ इंस्टीट्यूट आफ़ मेडीकल साइंसिस, हास्पिटल, बिलासपुर और अन्य** 304

पृष्ठ संख्या

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 26, नियम 9 और धारा 75 – वाद संपत्ति के भौतिक लक्षणों का निरीक्षण करने के लिए अधिवक्ता-आयुक्त की नियुक्ति – आवेदन की खारिजी – व्यादेश के वाद में आयुक्त की नियुक्ति द्वारा साक्ष्य त्यक्त करने का आधार – चूंकि व्यादेश के लिए वाद में किसी भौतिक लक्षण का उल्लेख करने से सूचना त्यक्त नहीं होती – अतः आवेदन की खारिजी उचित नहीं है ।

शमीम बेगम बनाम **वेन्नापूसा चेन्ना रेड्डी और एक अन्य** 291

– आदेश 37, नियम 1 – धन की वसूली के लिए वाद – वादी द्वारा पास बुक के अनुसार और प्रतिवादियों द्वारा दिए गए लेख के अनुसार धन जमा करने के आधार पर वाद फाइल किया जाना – प्रतिवादी द्वारा कतिपय धन की प्राप्ति को वादी द्वारा न्यायालय से छुपाने के कथन के आधार पर वाद का विरोध – सबूत का भार – वादी द्वारा प्रतिवादी के अभिकर्ता को कतिपय धन प्रदत्त करने का कथन – यह भार वादी पर जाता है कि वह यह साबित करे कि उसने प्रतिवादी के अभिकर्ता को दिए गए धन सहित समस्त ऋण चुका दिया था – इस संबंध में निचले न्यायालय को साक्ष्य अभिलिखित करने और पक्षकारों को अवसर देने का निदेश करना न्यायोचित होगा ।

भजन सिंह बनाम **नवनिध फाइनेन्स लिमिटेड और अन्य** 312

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– 10 और 13 – न्यायिक पृथक्करण और विवाह-विच्छेद द्वारा पत्नी और उसके मायके के लोगों के विरुद्ध गाली गलौज युक्त भद्दी भाषा का प्रयोग किया जाना व मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाना – पत्नी द्वारा

पृष्ठ संख्या

विवाह-विच्छेद के लिए याचिका फाइल किया जाना – पति द्वारा क्रूरता को अभिलेख पर साबित किया जाना – फिर भी कुटुंब न्यायालय द्वारा साक्ष्य का अनदेखा करते हुए न्यायिक पृथक्करण का आदेश पारित किया – यदि अभिलेख पर मानसिक क्रूरता का व्यवहार साबित हो गया है, तो कुटुंब न्यायालय को न्यायिक पृथक्करण के अनुतोष के बजाय विवाह को विघटित करने वाला याचित अनुतोष प्रदान करना चाहिए और विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करनी चाहिए ।

सपना (श्रीमती) बनाम **नीरज खंडेलवाल** 381

– धारा 13(1)(iक) – विवाह-विच्छेद – क्रूरता – आधार – पत्नी द्वारा यह कथन करते हुए विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया जाना कि उसका पति उसे मारता-पीटता है और अप्राकृतिक मैथुन करता है – पति द्वारा समुचित तामील के बावजूद न्यायालय में उपस्थित न होना और कोई प्रतिवाद न किया जाना – पति का व्यवहार क्रूरतापूर्ण माना जाएगा – पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार है ।

सुरभि त्रिवेदी (श्रीमती) बनाम **पुष्कर त्रिवेदी** 355

– धारा 13(1)(iक) [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 494] – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा क्रूरता – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध जारकर्म के झूठे अभिकथन लगाए जाने के आपराधिक परिवाद पर सिविल न्यायालय के निर्णय और पति के विभाग में झूठे अभिकथनों पर विभागीय जांच की कार्यवाही पूरी होने पर पति को आरोपों से दोषमुक्त पाए जाने के आधार पर, पति क्रूरता के कारण विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है ।

बलीराम बनाम **श्रीमती सुमित्रा** 372

पृष्ठ संख्या

– धारा 15 और 28 – विवाह-विच्छेद डिक्री – मंजूरी – पति द्वारा अपील के लिए उपबंधित परिसीमा अवधि अवसान से पूर्व पुनः विवाह किया जाना – यद्यपि पति का ऐसा आचरण उचित नहीं है तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि को दृष्टिगत करते हुए पति से पूर्व पत्नी को प्रतिकर दिलाया जा सकता है ।

रीना देवी (श्रीमती) बनाम **प्रमोद कुमार** 417

शमीम बेगम

बनाम

वेन्नापूसा चेन्ना रेड्डी और एक अन्य

तारीख 20 नवंबर, 2017

न्यायमूर्ति (डा.) बी. शिवशंकर राव

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 26, नियम 9 और धारा 75 – वाद संपत्ति के भौतिक लक्षणों का निरीक्षण करने के लिए अधिवक्ता-आयुक्त की नियुक्ति – आवेदन की खारिजी – व्यादेश के वाद में आयुक्त की नियुक्ति द्वारा साक्ष्य त्यक्त करने का आधार – चूंकि व्यादेश के लिए वाद में किसी भौतिक लक्षण का उल्लेख करने से सूचना त्यक्त नहीं होती – अतः आवेदन की खारिजी उचित नहीं है ।

यह पुनरीक्षण आवेदन सूचना जारी करने के आदेश से पूर्व से और ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर सूचना का आदेश किए जाने के पूर्व से अर्थात् 2010 से लंबित है । आवेदक/वादी ने व्यादेश के लिए फाइल किए गए वाद में वादपत्र की अनुसूची में उल्लिखित संपत्ति के भौतिक लक्षणों का उल्लेख करने के लिए स्थानीय निरीक्षण हेतु अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन 2010 का अंतरिम आवेदन सं. 964 फाइल किया था और निचले न्यायालय के समक्ष विरोध करने पर आवेदन तारीख 8 जुलाई, 2010 को खारिज कर दिया गया जिसे इस पुनरीक्षण में आक्षेपित किया गया है । पुनरीक्षण आवेदन में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – निचले न्यायालय का आक्षेपित खारिजी आदेश गलत प्रभाव के अधीन खारिज किया गया है तथा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 और धारा 75 का समुचित रूप से परिशीलन किए बिना खारिज किया गया है । उक्त उपबधों में किसी अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति के प्रयोजन के बारे में उपबंध किया गया है और संपत्ति पर ऐसे व्यक्ति के

कब्जे के संबंध में भौतिक लक्षणों का उल्लेख करने की ईप्सा की गई है जिसे किसी पक्षकार के रूप में मंजूर नहीं किया जा सकता और किसी आयुक्त की नियुक्ति द्वारा साक्ष्य को त्यक्त करना मंजूर नहीं किया जा सकता । निचले न्यायालय ने सूचना को त्यक्त करने (जो अनुज्ञेय नहीं है) और साक्ष्य को संगृहीत करने (जो अनुज्ञेय है) के बीच विभेद नहीं किया है । आयुक्त द्वारा सूचना देने से जो प्रतिषिद्ध किया गया है वह निरीक्षण के समय उसे बताया गया एक्स या वाई है और ए. या बी. और उसके समदृश कब्जा है । स्पष्टतया जो प्रतिषिद्ध नहीं है वह भौतिक लक्षण हैं (जहां साक्ष्य को संगृहीत किया जाना है) । निचला न्यायालय व्यादेश के लिए वाद में यह कहने में गलत था कि भौतिक लक्षणों का उपयोग करने का प्रयोजन सूचना को बहिष्कृत करता है । सूचना प्राप्त करना किसी स्थानीय जांच करने और व्यक्तियों से सुनी हुई सामग्री को संगृहीत करने को प्रतिषिद्ध करता है अथवा उसके समान सामग्री को और भौतिक लक्षणों का उल्लेख न करने को प्रतिषिद्ध करता है । उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए पुनरीक्षण में और वह भी दूसरे पक्ष की अनुपस्थिति में कोई आदेश पारित करने के बजाय और इस प्रक्रम पर मामले को आगे लंबित रखने के बजाय, जबकि सूचना संबंधी आदेश को 7 वर्ष गुजर चुके हैं, आवेदक को यह स्वतंत्रता दी जाती है कि वह ऊपर निर्दिष्ट विभेद की अवेक्षा करते हुए सुस्थापित अभिव्यक्तियों के निर्देश के साथ विरोध के पश्चात् अपने गुण-दोष के आधार पर विचार करने के लिए निचले न्यायालय के समक्ष नए सिरे से आवेदन फाइल करे । (पैरा 4, 6 और 7)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2016]	2016 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 338, तारीख 4 नवंबर, 2016 को विनिश्चित : **बांदी सैमुअल और एक अन्य** बनाम **मेदीदा नागेश्वर राव** ।	5, 6

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2010 सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 4105.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से मैसर्स वी. रघू

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति (डा.) बी. शिवशंकर राव – आवेदक/वादी द्वारा यह पुनरीक्षण आवेदन प्रधान कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, विजयवाड़ा द्वारा 2010 के मूल वाद सं. 253 में फाइल किए गए 2010 के अंतरिम आवेदन सं. 964 में तारीख 8 जुलाई, 2010 के आदेश से व्यथित होकर फाइल किया है ।

2. आवेदक/वादी के विद्वान् काउंसेल को सुना गया और प्रत्यर्थियों को जो उक्त वाद में प्रतिवादी हैं, और जो तामील के बावजूद उपस्थित नहीं हुए हैं, सुना गया माना जाता है ।

3. यह पुनरीक्षण आवेदन सूचना जारी करने के आदेश से पूर्व से और ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर सूचना का आदेश किए जाने के पूर्व से अर्थात् 2010 से लंबित है । आवेदक/वादी ने व्यादेश के लिए फाइल किए गए वाद में वादपत्र की अनुसूची में उल्लिखित संपत्ति के भौतिक लक्षणों का उल्लेख करने के लिए स्थानीय निरीक्षण हेतु अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन 2010 का अंतरिम आवेदन सं. 964 फाइल किया था और निचले न्यायालय के समक्ष विरोध करने पर आवेदन तारीख 8 जुलाई, 2010 को खारिज कर दिया गया जिसे इस पुनरीक्षण में आक्षेपित किया गया है ।

4. निचले न्यायालय का आक्षेपित खारिजी आदेश गलत प्रभाव के अधीन खारिज किया गया है तथा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 और धारा 75 का समुचित रूप से परिशीलन किए बिना खारिज किया गया है । उक्त उपबधों में किसी अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति के प्रयोजन के बारे में उपबंध किया गया है और संपत्ति पर ऐसे व्यक्ति के कब्जे के संबंध में भौतिक लक्षणों का उल्लेख करने की ईप्सा की गई है जिसे किसी पक्षकार के रूप में मंजूर नहीं किया जा सकता और किसी आयुक्त की नियुक्ति द्वारा साक्ष्य को त्यक्त करना मंजूर नहीं किया जा सकता । निचले न्यायालय ने सूचना को त्यक्त करने (जो अनुज्ञेय नहीं है) और साक्ष्य को संगृहीत करने (जो अनुज्ञेय है) के बीच विभेद नहीं किया है । आयुक्त द्वारा सूचना देने से जो प्रतिषिद्ध किया गया है वह निरीक्षण के समय उसे बताया गया एक्स या वाई है और ए. या बी. और उसके समदृश कब्जा है । स्पष्टतया जो प्रतिषिद्ध नहीं है वह भौतिक लक्षण हैं (जहां साक्ष्य को संगृहीत किया जाना है) ।

5. तथ्यतः इस न्यायालय ने **बांदी सैमुअल और एक अन्य** बनाम **मेदीदा नागेश्वर राव**[1] वाले मामले का निर्देश करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9(1) और धारा 75 के क्षेत्र पर विचार किया था और विभिन्न अभिव्यक्तियां की थीं । आदेश 26 के नियम 9 में स्थानीय अन्वेषण करने के लिए कमीशनों के बारे में कहा गया है । ऐसे किसी वाद में जिसमें न्यायालय स्थानीय अन्वेषण कराना आवश्यक समझता है या विवाद में किसी मामले को त्यक्त करने के प्रयोजन के लिए यह उचित समझता है या किसी संपत्ति का बाजार मूल्य सुनिश्चित करने के लिए अथवा फायदे या नुकसानी की किसी धनराशि को सुनिश्चित करने के लिए या वार्षिक शुद्ध लाभों को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक समझता है तो न्यायालय ऐसे किसी व्यक्ति के लिए ऐसा कमीशन जारी कर सकता है जैसा कि वह उचित समझे और इस बारे में उसे ऐसा अन्वेषण करने और न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए निदेश दे सकता है । परन्तु जहां राज्य सरकार ने ऐसे व्यक्तियों के बारे में जिन्हें ऐसा कमीशन जारी किया जाएगा, नियम विरचित किए हैं, वहां न्यायालय ऐसे नियमों द्वारा आबद्ध होगा । नियम में यह कहीं नहीं कहा गया है कि किस वाद में आयुक्त नियुक्त किया जा सकता है और किस वाद में नियुक्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि किसी भी सिविल वाद में आयुक्त नियुक्त किया जा सकता है जहां न्यायालय यह उचित समझता है कि कोई स्थानीय अन्वेषण कराना आवश्यक है । उपबंध में स्थानीय अन्वेषण शब्दों का प्रयोग किया गया है और स्थानीय अन्वेषण का प्रयोजन ऐसे किसी विवादित मामले को विवर्जित करता है जो स्वतः साक्ष्य के संग्रहण को अनुज्ञेय करना उपदर्शित करता हो तथापि, ऐसे संग्रहण के विशिष्ट लक्षण से मुख्य रूप से ऐसे मौखिक साक्ष्य को सुरक्षित रखा गया है और ऐसा न्यायालय और पक्षकारों के कीमती समय को बचाने के लिए किया गया है या जहां मौखिक साक्ष्य द्वारा प्रभावी रूप से साबित नहीं किया जा सकता यथा माप और सीमांकन जिनकी मौके पर भौतिक लक्षणों की पहचान होती है ।

6. निचला न्यायालय व्यादेश के लिए वाद में यह कहने में गलत था कि भौतिक लक्षणों का उपयोग करने का प्रयोजन सूचना को बहिष्कृत करता है । **बांदी सैमुअल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत स्पष्ट रूप से सूचना प्रकट करने और सूचना के सिवाय संविवाद में मामले को त्यक्त

---

[1] 2016 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 338, तारीख 4 नवंबर, 2016 को विनिश्चित ।

करने के बीच स्पष्ट विभेद करता है । सूचना प्राप्त करना किसी स्थानीय जांच करने और व्यक्तियों से सुनी हुई सामग्री को संगृहीत करने को प्रतिषिद्ध करता है अथवा उसके समान सामग्री को और भौतिक लक्षणों का उल्लेख न करने को प्रतिषिद्ध करता है ।

7. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए पुनरीक्षण में और वह भी दूसरे पक्ष की अनुपस्थिति में कोई आदेश पारित करने के बजाय और इस प्रक्रम पर मामले को आगे लंबित रखने के बजाय, जबकि सूचना संबंधी आदेश को 7 वर्ष गुजर चुके हैं, आवेदक को यह स्वतंत्रता दी जाती है कि वह ऊपर निर्दिष्ट विभेद की अवेक्षा करते हुए सुस्थापित अभिव्यक्तियों के निर्देश के साथ विरोध के पश्चात् अपने गुण-दोष के आधार पर विचार करने के लिए निचले न्यायालय के समक्ष नए सिरे से आवेदन फाइल करे ।

8. तद्नुसार सिविल पुनरीक्षण आवेदन निपटाया जाता है ।

9. परिणामतः लंबित प्रकीर्ण आवेदनों को, यदि कोई हों, बंद किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

पुनरीक्षण में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

कमला बाई दानसेना (श्रीमती) और अन्य

बनाम

सुब्रन दानसेना

तारीख 29 मई, 2017

न्यायमूर्ति प्रशान्त कुमार मिश्रा और न्यायमूर्ति अरविन्द सिंह चन्देल

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) – धारा 25 और हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 – धारा 6 – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन – पति और पत्नी द्वारा पृथक्-पृथक् निवास – अवयस्क बच्चों की संरक्षकता – पत्नी द्वारा यह कथन किया जाना कि उसके पास स्वयं के और बच्चों के भरणपोषण और शिक्षा के लिए आय के पर्याप्त साधन नहीं हैं – न्यायालय द्वारा बच्चों के कल्याण के लिए पिता की संरक्षकता दी जानी – माता द्वारा बच्चों से प्रेम और लगाव की दलील दी जानी – माता के प्रेम और लगाव को अवयस्क बच्चों के भविष्य और कल्याण पर अभिभावी नहीं माना जा सकता – पिता को जो बच्चों को बेहतर शिक्षा और भरणपोषण देने की स्थिति में है, अवयस्कों की संरक्षकता दी जानी न्यायोचित है ।

प्रत्यर्थी द्वारा यह प्रकथन किया गया है कि अपीलार्थी सं. 1 के अपनी ससुराल में रहने के दौरान पत्नी उसके माता-पिता को टोनी (जादू-टोना करने वाले व्यक्ति) कहकर पुकारती थी और छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा करती थी । अपीलार्थी/पत्नी के कहने पर प्रत्यर्थी ने अपने माता-पिता से पृथक् रहना आरंभ कर दिया तथापि, पत्नी का व्यवहार ठीक नहीं हुआ इसलिए वे ग्राम रेगांव (तमनार) चले गए तथापि, समाज के सम्मानित व्यक्तियों द्वारा बार-बार समझाने पर भी पत्नी का व्यहवार ठीक नहीं हुआ । इसके पश्चात् पति ने विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए एक आवेदन फाइल किया जिसे कुटुंब न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी सं. 1/पत्नी अवयस्क पुत्रों अर्थात् यशवंत कुमार और जसवंत कुमार के साथ पृथक् रहने लगी तथापि, उसके पास बच्चों की शिक्षा सहित उनके खान-पान और देखभाल के लिए पर्याप्त साधन नहीं थे इसलिए प्रत्यर्थी/पिता ने अवयस्क बालकों की अभिरक्षा के लिए अनुरोध किया । कुटुंब न्यायालय ने प्रत्यर्थी के हक में निष्कर्ष अभिलिखित करते

हुए अपीलार्थी/पत्नी के स्वीकृति वाले उस कथन का निर्देश किया जहां उसने यह स्वीकार किया था कि वह एक गरीब व्यक्ति है और उसके पास उपार्जन के पर्याप्त साधन नहीं हैं । उसने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया कि वह स्वयं का जैसे-तैसे भरणपोषण करती है और उसके बच्चों के भरणपोषण के लिए उसके पास पर्याप्त धनराशि नहीं है और इसलिए वह अपने माता-पिता के ऊपर निर्भर है । अपीलार्थी कुटुंब न्यायालय, रायगढ़ द्वारा पारित उस आदेश से व्यथित हुई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी/पिता का संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन आवेदन मंजूर किया गया है और जिसके द्वारा अवयस्क यशवंत कुमार आयु लगभग 7 वर्ष और जसवंत कुमार आयु लगभग 6 वर्ष की अभिरक्षा प्रत्यर्थी के सुपुर्द करने का निदेश दिया गया है । अतः अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री चटर्जी ने यह दलील देते हुए न्यायालय को सहमत करने का प्रयास किया है कि अवयस्क यशवंत कुमार और जसवंत कुमार प्रत्यर्थी के साथ रहने के लिए इच्छुक नहीं हैं क्योंकि वे माता से अत्यधिक लगाव रखते हैं और इसलिए अवयस्कों के कल्याण के बारे में विनिश्चय करते समय उनकी इच्छा को ध्यान में रखा जाना चाहिए । श्री चटर्जी ने यह भी दलील दी है कि जहां अवयस्कों को माता की अभिरक्षा के अधीन रखा जाता है वहां पिता को बच्चों से मिलने का अधिकार प्रदान किया जा सकता है । उक्त दलील पर गहराई से विचार करने के पूर्व न्यायालय श्री चटर्जी द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि अवयस्कों का कल्याण उनकी उचित शिक्षा सहित उनकी उचित देखभाल पर निर्भर है, जो कि उनके जीवन के अधिकार का एक भाग है और बेहतर तरीके से रहने के लिए अधिकार का एक भाग है । मात्र इस आधार पर कि वे माता से लगाव रखते हैं, उनके भविष्य को बरबाद नहीं किया जा सकता । आज के प्रतियोगिता पूर्ण संसार में बच्चों को जीवन के लिए बेहतर शिक्षा और भविष्य में उनकी आजीविका उपार्जित करने की अत्यधिक आवश्यकता होती है । माता के प्रेम और लगाव को अवयस्कों के भविष्य को प्रभावित करने के लिए आंख मूंदकर स्वीकार नहीं किया जा सकता । यदि माता बच्चों से सच्चा प्यार और लगाव रखती है तो उसे इसके बजाय कि उन्हें समुचित शिक्षा प्रदान न करके उनके भविष्य पर छोड़ दिया जाए, प्रथमतः उनके भविष्य को सुरक्षित करना चाहिए । मामले के संपूर्ण तथ्यों और

परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय यह महसूस करता है कि पिता को अभिरक्षा देना अधिक उपयुक्त है । दूसरे शब्दों में, अवयस्कों के पिता को जो कि अन्यथा भी नैसर्गिक संरक्षक है, बच्चों की अभिरक्षा देकर हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 के निबंधनों में माता को बच्चों से मिलने का अधिकार मंजूर किया जाना अधिक उपयुक्त है । प्रत्यर्थी झिलकाभर डाकखाना बासनपाली जिला रायगढ़ में रहता है जबकि अपीलार्थी कातंग डाकखाना बोदासरिया जिला रायगढ़ में रहती है । यह सूचित किया गया है कि दोनों स्थानों के बीच की दूरी लगभग 45 किलोमीटर की है । अतः न्यायालय कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आदेश को कायम रखते हुए अपीलार्थी को सप्ताह में एक बार अर्थात् शनिवार या रविवार को अपनी सुविधा के अनुसार अपने दोनों पुत्रों से मिलने के अधिकार को मंजूर करता है । वह अपने पुत्रों से 11.00 बजे पूर्वाह्न से 5.00 बजे अपराह्न के बीच न्यूनतम दो घंटे की अवधि के लिए मिल सकती है । जब भी वह अपने पुत्रों से मिलने जाती है तो प्रत्यर्थी अपीलार्थी को दो सौ रुपए के यात्रा भत्ते का संदाय करेगा । मिलने के अधिकारों का यह अर्थ नहीं है कि यदि किसी अन्य अवसर पर अपीलार्थी अपने पुत्रों से मिलना चाहती है तो प्रत्यर्थी उसे ऐसा करने के लिए अनुज्ञात नहीं करेगा । न्यायालय यह भी निदेश देता है कि महत्वपूर्ण त्यौहारों के अवसरों पर अपीलार्थी वर्ष में एक बार अपने माता-पिता के मकान पर यदि वह ऐसा चाहती है, अपने पुत्रों को रहने के लिए ला सकती है । (पैरा 10, 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) 8 एस. सी. सी. 819 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5407 : **पुर्वी मुकेश गाड़ा** बनाम **मुकेश पोपट लाल गाड़ा और एक अन्य** ;	8
[2015]	(2015) 8 एस. सी. सी. 318 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 2232 : **रौक्सन शर्मा** बनाम **अरुण शर्मा** ।	9

अपीली (सिविल) प्रकीर्ण अधिकारिता : 2015 की प्रथम अपील (प्रकीर्ण) सं. 163.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री एन. के. चटर्जी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री सलीम क़ाज़ी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – अपीलार्थी कुटुंब न्यायालय, रायगढ़ द्वारा पारित उस आदेश से व्यथित हुई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी/पिता का संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन आवेदन मंजूर किया गया है और जिसके द्वारा अवयस्क यशवंत कुमार आयु लगभग 7 वर्ष और जसवंत कुमार आयु लगभग 6 वर्ष की अभिरक्षा प्रत्यर्थी के सुपुर्द करने का निदेश दिया गया है ।

2. पक्षकारों का विवाह तारीख 25 मार्च, 2005 को हुआ था । इसके पश्चात् अवयस्क यशवंत कुमार का तारीख 24 नवंबर, 2007 को और जसवंत कुमार का तारीख 23 फरवरी, 2009 को जन्म हुआ था ।

3. प्रत्यर्थी द्वारा यह प्रकथन किया गया है कि अपीलार्थी सं. 1 के अपनी ससुराल में रहने के दौरान पत्नी उसके माता-पिता को टोनी (जादू-टोना करने वाले व्यक्ति) कहकर पुकारती थी और छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा करती थी । अपीलार्थी/पत्नी के कहने पर प्रत्यर्थी ने अपने माता-पिता से पृथक् रहना आरंभ कर दिया तथापि, पत्नी का व्यवहार ठीक नहीं हुआ इसलिए वे ग्राम रेगांव (तमनार) चले गए तथापि, समाज के सम्मानित व्यक्तियों द्वारा बार-बार समझाने पर भी पत्नी का व्यहवार ठीक नहीं हुआ । इसके पश्चात् पति ने विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए एक आवेदन फाइल किया जिसे कुटुंब न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी सं. 1/पत्नी अवयस्क पुत्रों अर्थात् यशवंत कुमार और जसवंत कुमार के साथ पृथक् रहने लगी तथापि, उसके पास बच्चों की शिक्षा सहित उनके खान-पान और देखभाल के लिए पर्याप्त साधन नहीं थे इसलिए प्रत्यर्थी/पिता ने अवयस्क बालकों की अभिरक्षा के लिए अनुरोध किया ।

4. अपीलार्थी/पत्नी ने वादपत्र में किए गए प्रकथनों से इनकार किया और यह कहा कि बच्चे अपने पिता के साथ नहीं जाना चाहते हैं ।

5. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी/पत्नी की कमजोर वित्तीय स्थिति को दृष्टिगत करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि अवयस्क बालकों का

कल्याण प्रत्यर्थी/पिता के साथ रहने में है । प्रत्यर्थी/पिता परचून की दुकान चलाता है और अवयस्क बालकों की शिक्षा सहित उनके जीवन की अच्छी देखभाल करने के लिए उसे पर्याप्त आय होती है ।

6. कुटुंब न्यायालय ने प्रत्यर्थी के हक में निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए अपीलार्थी/पत्नी के स्वीकृति वाले उस कथन का निर्देश किया जहां उसने यह स्वीकार किया था कि वह एक गरीब व्यक्ति है और उसके पास उपार्जन के पर्याप्त साधन नहीं हैं । उसने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया कि वह स्वयं का जैसे-तैसे भरणपोषण करती है और उसके बच्चों के भरणपोषण के लिए उसके पास पर्याप्त धनराशि नहीं है और इसलिए वह अपने माता-पिता के ऊपर निर्भर है ।

7. यदि प्रत्यर्थी की वित्तीय स्थिति पर अपीलार्थी की तुलनात्मक स्थिति को देखते हुए विचार किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी/पिता ग्राम बासनपाली, इन्दिरा नगर पोस्ट-जोरकेला तहसील तमनार जिला रायगढ़ में परचून की दुकान चलाता है । उसने अपने कथन के पैरा 5 में अपनी मासिक आय 15,000/- से 20,000/- रुपए दर्शाई है । अपीलार्थी द्वारा इस मुद्दे पर कोई प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है ।

8. न्यायालयों को सुस्थापित विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए अवयस्क की अभिरक्षा के संबंध में विनिश्चय करते समय सबसे पहले अवयस्क के हित को ध्यान में रखना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने **पुर्वी मुकेश गाड़ा** बनाम **मुकेश पोपट लाल गाड़ा और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए हाल ही के विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय के लिए यह आबद्धकर है कि वह अभिरक्षा के संबंध में आदेश पारित करने के पूर्व बालकों के कल्याण पर विचार करे क्योंकि ऐसे मामलों में बालक का कल्याण ही सर्वोपरि है ।

9. उच्चतम न्यायालय द्वारा **रौक्सन शर्मा** बनाम **अरुण शर्मा**[2] वाले मामले के एक हाल ही के निर्णय में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

"10. हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षता अधिनियम की धारा 6 का प्रारंभिक महत्व है । यह धारा 4(ख) को दोहराते हुए आगे यह स्पष्ट

---

[1] (2017) 8 एस. सी. सी. 819 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5407.

[2] (2015) 8 एस. सी. सी. 318 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 2232.

करती है कि संरक्षकता के अंतर्गत अवयस्क का व्यक्तित्व और संपत्ति दोनों आते हैं ; और आगे विवादात्मक रूप से यह कहा गया है कि पिता और उसके पश्चात् माता किसी हिन्दू के नैसर्गिक संरक्षक होंगे । इस प्रकार उल्लेख करते हुए यह भी कहा गया है कि किसी अवयस्क की जिसने 5 वर्ष की आयु पूरी न की हो, अभिरक्षा साधारणतया माता को दी जाएगी । परंतुक का महत्व और विस्तार इस न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा पूर्ण रूप से स्पष्ट किया गया है और यदि संक्षिप्ततः कहा जाए तो यह परंतुक एक अपवाद की प्रकृति का है जिसके लिए साधारणतया पहले ही विहित कर दिया गया है । 'साधारणतया' शब्द के प्रयोग पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता । यह इस प्रत्याशा को विहित करता है कि यद्यपि यह खंडनीय है तथापि, माता के हक में है । ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 'साधारणतया' शब्द के प्रयोग के महत्व की अनदेखी की है क्योंकि उसने आक्षेपित आदेश के पैरा 13 में यह मत व्यक्त किया है कि माता थलवीर की जो एक समय बीमार हो गई थी, अंतरिम अभिरक्षा मंजूर करने के लिए अपनी उपयुक्तता साबित नहीं कर पाई है । परंतुक पिता पर यह साबित करने का भार डालता है कि यह बात छोटे बच्चे के कल्याण में नहीं है कि उसकी माता को बच्चे की अभिरक्षा दी जाए । संसद् या विधान-मंडल की प्रज्ञा की ऐसे वैवेकिक निर्वचन द्वारा उपेक्षा नहीं की जा सकती जो वस्तुतः अधिनियमिती के भाव को अकृत करती हो ।

11. अब हम पिता की ओर से विद्वान् जयेष्ठ काउंसेल द्वारा हमारे समक्ष उद्धृत नजीरों की सुसंगता पर विचार करेंगे । सरिता शर्मा **बनाम** सुशील शर्मा, ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1019 वाले मामले में संयुक्त राज्य अमरीका के न्यायालय की अधिकारिता में पारित आदेशों की अवज्ञा में माता सरिता वैवाहिक नातेदारी से उत्पन्न दो बच्चों के साथ भारत वापस लौटी थी । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विवाह-विच्छेद की डिक्री और अभिरक्षा संबंधी निदेशों का जो किसी सक्षम न्यायालय द्वारा जारी किए गए हैं, सम्मान किया जाना चाहिए और तद्नुसार बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका मंजूर करते हुए माता को निदेश दिया कि वह बच्चों की अभिरक्षा पिता सुशील को लौटाए । यह न्यायालय इस बात से आश्वस्त नहीं है कि भारत के न्यायालयों द्वारा इस बारे में आगे विचार किया जाए कि क्या बच्चों

का हित जो सर्वोपरि है, विवर्जित कर दिया जाए और इस पर आगे तर्क नहीं दिया जा सकता । जहां तक हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 का संबंध है, यह मत व्यक्त किया गया है कि यद्यपि यह धारा अवयस्क पुत्र के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में पिता का उल्लेख करती है तथापि, इसे सर्वोपरि कल्याण पर अभिभावी नहीं माना जा सकता और बालक का कल्याण ही सर्वोपरि है । इस मत को दोहराया गया था और इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए उच्च न्यायालय के विनिश्चय को उलट दिया था कि बच्चों का हित और कल्याण यह व्यादेशित करता है कि बच्चे की अभिरक्षा उसकी माता को दी जानी चाहिए । अतः यह मामला उस विधिक और तथ्यात्मक स्थिति के विरुद्ध जाता है जो हमारे समक्ष पिता ने अनुरोध किया है । इस तथ्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि दोनों बच्चे 5 वर्ष ऊपर की आयु के हैं इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा अभिरक्षा माता से पिता को नहीं लौटाई जानी चाहिए क्योंकि थलवीर उस समय लगभग 1 वर्ष की आयु का था और वर्तमान में अभी भी 3 वर्ष से कम आयु का है ।"

10. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री चटर्जी ने यह दलील देते हुए हमें सहमत करने का प्रयास किया है कि अवयस्क यशवंत कुमार और जसवंत कुमार प्रत्यर्थी के साथ रहने के लिए इच्छुक नहीं हैं क्योंकि वे माता से अत्यधिक लगाव रखते हैं और इसलिए अवयस्कों के कल्याण के बारे में विनिश्चय करते समय उनकी इच्छा को ध्यान में रखा जाना चाहिए । श्री चटर्जी ने यह भी दलील दी है कि जहां अवयस्कों को माता की अभिरक्षा के अधीन रखा जाता है वहां पिता को बच्चों से मिलने का अधिकार प्रदान किया जा सकता है ।

11. उक्त दलील पर गहराई से विचार करने के पूर्व हम श्री चटर्जी द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं क्योंकि अवयस्कों का कल्याण उनकी उचित शिक्षा सहित उनकी उचित देखभाल पर निर्भर है, जो कि उनके जीवन के अधिकार का एक भाग है और बेहतर तरीके से रहने के लिए अधिकार का एक भाग है । मात्र इस आधार पर कि वे माता से लगाव रखते हैं, उनके भविष्य को बरबाद नहीं किया जा सकता । आज के प्रतियोगिता पूर्ण संसार में बच्चों को जीवन के लिए बेहतर शिक्षा और भविष्य में उनकी आजीविका उपार्जित करने की अत्यधिक आवश्यकता होती है । माता के प्रेम और लगाव को अवयस्कों के भविष्य को प्रभावित

करने के लिए आंख मूंदकर स्वीकार नहीं किया जा सकता । यदि माता बच्चों से सच्चा प्यार और लगाव रखती है तो उसे इसके बजाय कि उन्हें समुचित शिक्षा प्रदान न करके उनके भविष्य पर छोड़ दिया जाए, प्रथमतः उनके भविष्य को सुरक्षित करना चाहिए ।

12. मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् हम यह महसूस करते हैं कि पिता को अभिरक्षा देना अधिक उपयुक्त है । दूसरे शब्दों में, अवयस्कों के पिता को जो कि अन्यथा भी नैसर्गिक संरक्षक है, बच्चों की अभिरक्षा देकर हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 के निबंधनों में माता को बच्चों से मिलने का अधिकार मंजूर किया जाना अधिक उपयुक्त है । प्रत्यर्थी झिलकाभर डाकखाना बासनपाली जिला रायगढ़ में रहता है जबकि अपीलार्थी कातंग डाकखाना बोदासरिया जिला रायगढ़ मे रहती है । यह सूचित किया गया है कि दोनों स्थानों के बीच की दूरी लगभग 45 किलोमीटर की है । अतः हम कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आदेश को कायम रखते हुए अपीलार्थी को सप्ताह में एक बार अर्थात् शनिवार या रविवार को अपनी सुविधा के अनुसार अपने दोनों पुत्रों से मिलने के अधिकार को मंजूर करते हैं । वह अपने पुत्रों से 11.00 बजे पूर्वाह्न से 5.00 बजे अपराह्न के बीच न्यूनतम दो घंटे की अवधि के लिए मिल सकती है । जब भी वह अपने पुत्रों से मिलने जाती है तो प्रत्यर्थी अपीलार्थी को दो सौ रुपए के यात्रा भत्ते का संदाय करेगा । मिलने के अधिकारों का यह अर्थ नहीं है कि यदि किसी अन्य अवसर पर अपीलार्थी अपने पुत्रों से मिलना चाहती है तो प्रत्यर्थी उसे ऐसा करने के लिए अनुज्ञात नहीं करेगा । हम यह भी निदेश देते हैं कि महत्वपूर्ण त्यौहारों के अवसरों पर अपीलार्थी वर्ष में एक बार अपने माता पिता के मकान पर यदि वह ऐसा चाहती है, अपने पुत्रों को रहने के लिए ला सकती है ।

13. उपर्युक्त संप्रेक्षणों के साथ इस अपील का निपटान किया जाता है ।

अपील में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

मातुश्री ट्रेडिंग कंपनी, छत्तीसगढ़

बनाम

डीन (सी. आई. एम. एस.) छत्तीसगढ़ इंस्टीट्यूट आफ़ मेडीकल साइंसिस, हास्पिटल, बिलासपुर और अन्य

तारीख 8 सितंबर, 2017

मुख्य न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन और न्यायमूर्ति शरद कुमार गुप्ता

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 और 299 – आयुर्विज्ञान संबंधी वस्तुओं के प्रदाय के लिए निविदा – तकनीकी बोली लगाने वाली कंपनी द्वारा निविदा में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों को स्वीकार करते हुए प्रदाय के लिए भिन्न समयावधि की प्रस्थापना – कंपनी को सूचित किए बिना निविदा खोलने की तारीख़ में परिवर्तन – कंपनी द्वारा यह साबित करने में असमर्थ रहना कि तारीख के परिवर्तन से उसे कोई नुकसान हुआ है – तकनीकी बोली खोलने की तारीख में परिवर्तन करना मनमाना और अनुचित नहीं कहा जा सकता ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 299 – आयुर्विज्ञान संबंधी वस्तुओं के प्रदाय के लिए निविदा – निविदा प्रस्तुत करने के लिए निबंधन और शर्तें – निबंधनों और शर्तों के अनुसार वस्तुओं के प्रदाय के लिए 21 दिन की अवधि की शर्त – निविदा करने वाली कंपनी द्वारा अपनी शर्त अधिरोपित करते हुए प्रदाय का समय 4 से 6 सप्ताह उल्लिखित किया जाना – निविदा जारी करने वाले प्राधिकारी द्वारा कंपनी की निविदा खारिज किया जाना – कंपनी द्वारा इस संबंध में कभी भी कोई शिकायत फाइल न की जानी – चूंकि कंपनी द्वारा प्रदाय के लिए उल्लिखित अवधि निविदा के निबंधनों और शर्तों के भंग में है – अतः निविदा की खारिजी को अन्यायोचित नहीं कहा जा सकता ।

याची ने वर्तमान रिट याचिका द्वारा दो आधारों पर प्रत्यर्थियों द्वारा की गई कार्रवाई को आक्षेपित किया है ; प्रथम आधार यह है कि प्रत्यर्थियों ने किसी पूर्व सूचना के बिना निविदा खोलने की तारीख में परिवर्तन किया और द्वितीय आधार यह है कि उसके तारीख 10 जुलाई, 2017 के

व्याख्या-पत्र उपाबंध पी-7 के आधार पर उसकी तकनीकी बोली को मौखिक रूप से खारिज किया है । संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि याची एक व्यापारिक कंपनी है जो विज्ञान संबंधी और आयुर्विज्ञान संबंधी उपकरणों, रसायनों, कांच के बर्तनों और रोग विज्ञानी वस्तुओं के प्रदाय का कार्य करती है । तारीख 8 जून, 2017 का उपाबंध पी-3 उक्त निविदा के निबंधनों और नियमों को उपदर्शित करता है । याची ने अंतिम तारीख से पूर्व तकनीकी बोली और कीमत बोली प्रस्तुत की थी । उसने उपाबंध पी-3 के निबंधनों और शर्तों के खंड 32 के अनुसार सभी शर्तों को स्वीकार करते हुए नोटरी से सम्यक्तः सत्यापित शपथपत्र भी फाइल किया था । उसकी तकनीकी बोली इस आधार पर खारिज कर दी गई थी कि उसने व्याख्या-पत्र उपाबंध पी-7 में चीजों का प्रदाय 4 से 6 सप्ताह के भीतर करने की समय अवधि उल्लिखित की थी । याची द्वारा रिट याचिका में उक्त खारिजी को आक्षेपित किया गया है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह उल्लेखनीय है कि याची ने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस बारे में कोई शिकायत फाइल नहीं की कि तकनीकी बोलियां उसे सूचित किए बिना तारीख 14 जुलाई, 2017 के बजाय तारीख 18 जुलाई, 2017 को खोली गई हैं । याची यह उपदर्शित करने में भी विफल रहा है कि प्रत्यर्थियों की इस कार्रवाई से उसके साथ अन्याय हुआ है । इसके अतिरिक्त अन्य किसी आवेदक ने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष ऐसी कोई शिकायत नहीं की थी । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थियों द्वारा तकनीकी बोलियों को खोलने की तारीख में परिवर्तन करने की कार्रवाई मनमानी, अनुचित या असद्भाविक है । इसके अतिरिक्त याची के पक्षकथनानुसार बाद में उसे यह पता चला कि उसकी तकनीकी बोली, तकनीकी बोली के साथ उपाबंध पी-7 को अतिरिक्त रूप में पेश करने के कारण खारिज कर दी गई थी । अतः लिखित में उसकी तकनीकी बोली की खारिजी की सूचना न देना घातक नहीं है । अतः यह न्यायालय याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस संबंध में दी गई दलील को खारिज करता है । (पैरा 6 और 7)

याची के पक्षकथनानुसार उसने तकनीकी बोली के साथ एक प्रस्ताव किया था कि और वह यह कि वह शर्त सं. 5 सहित उपाबंध पी-3 के सभी निबंधनों और शर्तों को स्वीकार करता है कि वह सभी चीजों का प्रदाय

मांग की प्राप्ति की तारीख से 21 दिनों के भीतर करेगा । उसने उपाबंध पी-7 द्वारा यह भी प्रस्थापना की थी कि वह चीजों का प्रदाय 4 से 6 सप्ताह के भीतर करेगा और प्रत्यर्थी 21 दिनों के भीतर भुगतान करेंगे । उपाबंध पी-7 की दूसरी शर्त उपाबंध पी-3 के पांचवें निबंधन के भंग में है । इन परिस्थितियों में और उपर्युक्त न्यायिक निर्णयों को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि चीजों के प्रदाय के लिए निर्बंधित अवधि के बारे में दोनों के द्वारा की गई प्रस्थापना निश्चित और स्पष्ट नहीं है और इसलिए यह अस्पष्ट और संदेहास्पद है क्योंकि यह दोनों प्रस्तावों से भिन्न है । अतः प्रदाय के लिए निर्बंधित अवधि के संबंध में दोनों प्रस्तावों का अर्थ अनिश्चितता से ग्रसित है । उपाबंध पी-7 की तीसरी शर्त उपाबंध पी-3 के निबंधनों और शर्तों से असंगत है क्योंकि यह भुगतान के लिए ऐसी कोई समय अवधि के बारे में उपबंध नहीं करती । अतः न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि दोनों ही प्रस्थापनाएं विधिमान्य प्रस्थापनाएं नहीं हैं । उपाबंध पी-3 और उपाबंध पी-7 के निबंधनों और शर्तों को दृष्टिगत करते हुए तथा ऊपर उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन हस्तक्षेप करने के लिए यह एक उपयुक्त मामला नहीं है । इस रिट याचिका में कोई बल नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । (पैरा 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1989]	ए. आई. आर. 1989 दिल्ली 315 : **महावीर आटो स्टोर्स** बनाम **इंडियन आयल कारपोरेशन लिमिटेड ;**	12
[1985]	(1985) आल. ई. आर. 128 : **टेलर** बनाम **पोरटिंगटन ;**	10
[1966]	ए. आई. आर. 1966 मैसूर 118 : **कॉफी बोर्ड बंगलौर** बनाम **जनाब दादा हाजी इब्राहिम हलारी ;**	10
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 152 : **केशव लाल लल्लूभाई पटेल** बनाम **लालभाई त्रिकुम लाल मिल्स लिमिटेड ।**	13

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2284.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री अविनाश सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री आर. के. गुप्ता, उप महाधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति शरद कुमार गुप्ता ने दिया ।

न्या. गुप्ता – याची ने वर्तमान रिट याचिका द्वारा दो आधारों पर प्रत्यर्थियों द्वारा की गई कार्रवाई को आक्षेपित किया है ; प्रथम आधार यह है कि प्रत्यर्थियों ने किसी पूर्व सूचना के बिना निविदा खोलने की तारीख में परिवर्तन किया और द्वितीय आधार यह है कि उसके तारीख 10 जुलाई, 2017 के व्याख्या-पत्र उपाबंध पी-7 के आधार पर उसकी तकनीकी बोली को मौखिक रूप से खारिज किया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि याची एक व्यापारिक कंपनी है जो विज्ञान संबंधी और आयुर्विज्ञान संबंधी उपकरणों, रसायनों, कांच के बर्तनों और रोग विज्ञानी वस्तुओं के प्रदाय का कार्य करती है । तारीख 8 जून, 2017 का उपाबंध पी-3 उक्त निविदा के निबंधनों और नियमों को उपदर्शित करता है । याची ने अंतिम तारीख से पूर्व तकनीकी बोली और कीमत बोली प्रस्तुत की थी । उसने उपाबंध पी-3 के निबंधनों और शर्तों के खंड 32 के अनुसार सभी शर्तों को स्वीकार करते हुए नोटरी से सम्यक्तः सत्यापित शपथपत्र भी फाइल किया था । उसकी तकनीकी बोली इस आधार पर खारिज कर दी गई थी कि उसने व्याख्या-पत्र उपाबंध पी-7 में चीजों का प्रदाय 4 से 6 सप्ताह के भीतर करने की समय अवधि उल्लिखित की थी । याची द्वारा रिट याचिका में उक्त खारिजी को आक्षेपित किया गया है ।

3. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निबंधनों और शर्तों (उपाबंध पी-3) के खंड 16 के अनुसार विभिन्न आवेदकों की तकनीकी बोली तारीख 14 जुलाई, 2017 को 4.00 बजे अपराह्न खोली जानी थी तथापि, प्रत्यर्थियों ने इसे पूर्व सूचना दिए बिना तारीख 18 जुलाई, 2017 को खोला । इससे प्रत्यर्थियों का मनमानापन, अनुचितता और असद्भाविकता उपदर्शित होती है । उक्त व्याख्या-पत्र तकनीकी बोली का भाग था और

लिपिकीय त्रुटि के कारण इस व्याख्या-पत्र (उपाबंध पी-7) में वस्तुओं के प्रदाय के लिए समय "4 से 6 सप्ताह के भीतर" रूप में अज्ञानतावश उल्लिखित किया गया था । प्रत्यर्थियों ने उसकी तकनीकी बोली की खारिजी के लिए उसे लिखित में आधार संसूचित नहीं किए । प्रत्यर्थियों की कार्रवाई अयुक्तियुक्त और अवैधानिक है ।

4. विद्वान् उप महाधिवक्ता ने यह दलील देते हुए प्रत्यर्थियों की कार्रवाई का समर्थन किया है कि याची ने अपने व्याख्या-पत्र में यह उल्लेख किया था कि 4 से 6 सप्ताह के भीतर प्रदाय किया जाएगा, जबकि प्रत्यर्थियों द्वारा 21 दिन के भीतर संदाय करने के लिए कहा गया था जो कि याची की समय अवधि, निविदा के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध है ।

5. यह उल्लेख करना आवश्यक है कि उपाबंध पी-3 के खंड 5 और 16 वर्तमान मामले में विवाद को सुलझाने के लिए उपयोगी हैं, जो इस प्रकार हैं :–

> "5. क्रय हेतु आदेशित केमिकल, रिजेंट, डायग्नोस्टिक किट एवं अन्य मेडिकल सामग्री आदेश प्राप्ति के 21 दिवस के अन्दर सम्पूर्ण मापदण्ड के अनुसार प्रदाय करना होगा अन्यथा आदेश स्वयमेव निरस्त माना जाएगा । समय पर प्रदान न करने की दशा में विलम्ब से प्राप्त सामग्री स्वीकार नहीं की जाएगी तथा प्रदायकर्ता को अपने स्वयं के व्यय से वापस लेना होगा ।
>
> ....
>
> 16. निविदा नियम तिथि 14.07.2017 में दोपहर 3 बजे के पूर्व शासकीय पंजीकृत डाक/स्पीड पोस्ट से अथवा उनके अधिकृत प्रतिनिधियों की उपस्थिति में निविदा दिनांक शाम 4.00 बजे क्रय समिति के समक्ष खोली जाएगी । शासकीय अवकाश की स्थिति में दूसरे कार्य दिवस में निविदा खोली जाएगी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

6. यह उल्लेखनीय है कि याची ने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस बारे में कोई शिकायत फाइल नहीं की कि तकनीकी बोलियां उसे सूचित किए बिना तारीख 14 जुलाई, 2017 के बजाय तारीख 18 जुलाई, 2017 को

खोली गई हैं । याची यह उपदर्शित करने में भी विफल रहा है कि प्रत्यर्थियों की इस कार्रवाई से उसके साथ अन्याय हुआ है । इसके अतिरिक्त अन्य किसी आवेदक ने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष ऐसी कोई शिकायत नहीं की थी । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थियों द्वारा तकनीकी बोलियों को खोलने की तारीख में परिवर्तन करने की कार्रवाई मनमानी, अनुचित या असद्भाविक है ।

7. इसके अतिरिक्त याची के पक्षकथनानुसार बाद में उसे यह पता चला कि उसकी तकनीकी बोली, तकनीकी बोली के साथ उपाबंध पी-7 को अतिरिक्त रूप में पेश करने के कारण खारिज कर दी गई थी । अतः लिखित में उसकी तकनीकी बोली की खारिजी की सूचना न देना घातक नहीं है । अतः यह न्यायालय याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस संबंध में दी गई दलील को खारिज करता है ।

8. यह स्पष्ट है कि व्याख्या-पत्र उपाबंध पी-7 में दिए गए निबंधनों और शर्तों का खंड 2 और 3 का मामले का विनिश्चय करने के लिए अत्यधिक महत्व है, जो इस प्रकार हैं :–

> "निबंधन और शर्तें –
>
> 2. 4 से 6 सप्ताह के भीतर प्रदाय
>
> 3. 21 दिन के भीतर भुगतान ।"

9. उपाबंध पी-7 की अन्तर्वस्तु से यह स्पष्ट होता है कि याची द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 को प्रस्तावित प्रस्थापना के सिवाय और कुछ नहीं है, क्योंकि याची के लिए तकनीकी बोली के साथ उपाबंध पी-7 फाइल करना आवश्यक नहीं था तथापि, उसने ऐसा किया ।

10. **टेलर** बनाम **पोरटिंगटन**[1] और **कॉफी बोर्ड बंगलौर** बनाम **जनाब दादा हाजी इब्राहिम हलारी**[2] वाले मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रस्ताव के निबंधन निश्चित और स्पष्ट होने चाहिए । यदि प्रस्ताव के निबंधन निश्चित या स्थायी नहीं है तो यह एक विधिमान्य प्रस्ताव नहीं होगा क्योंकि इस बारे में स्पष्ट नहीं होगा कि पक्षकार निश्चित तौर पर क्या चाहते हैं । प्रस्ताव के निबंधन निश्चित होने चाहिए । प्रस्ताव अनिश्चित,

---

[1] (1985) आल. ई. आर. 128.

[2] ए. आई. आर. 1966 मैसूर 118.

अस्पष्ट या संदेहास्पद नहीं होना चाहिए ।

11. भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 29 का उपबंध उल्लेखनीय है जो नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "29. **करार अनिश्चितता के कारण शून्य है** – वे करार जिनका अर्थ निश्चित नहीं है या निश्चित किया जाना शक्य नहीं है, शून्य है ।"

12. दिल्ली उच्च न्यायालय ने **महावीर आटो स्टोर्स** बनाम **इंडियन आयल कारपोरेशन लिमिटेड**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है कि कोई अभिकथित संविदा जिसमें मात्रा, प्रदाय की अवधि या प्रदाय की कीमत अवधारित नहीं की जा सकती, अनिश्चित और अस्पष्ट संविदा है ।

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **केशव लाल लल्लूभाई पटेल** बनाम **लालभाई त्रिकुम लाल मिल्स लिमिटेड**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि कोई विनिर्माता जो माल का प्रदाय करने के लिए सहमत हुआ है, क्रेता को यह लिखता है 'हम आपके द्वारा दिए गए मांग पत्र को समय से पूरा नहीं कर सकते ....कृपया यह नोट करें कि हमारे साथ लंबित आपकी सभी संविदाओं के परिदान के समय के बारे में स्वतः यह समझा जाएगा कि विस्तारित अवधि के कारण कार्य रोक दिया गया है और यह रोक क्रियाकलाप की सामान्य स्थिति तक है' अतः समय के विस्तार के लिए दो शर्तें हैं जिन्हें यदि क्रेता स्वीकार भी करते हैं, तो भी उन्हें अस्पष्ट और अनिश्चित माना जाएगा क्योंकि यह संभव नहीं था कि उस अवधि को निश्चित माना जाए जिसके अनुपालन के लिए समय का विस्तार आशयित था ।

14. याची के पक्षकथनानुसार उसने तकनीकी बोली के साथ एक प्रस्ताव किया था और वह यह कि वह शर्त सं. 5 सहित उपाबंध पी-3 के सभी निबंधनों और शर्तों को स्वीकार करता है कि वह सभी चीजों का प्रदाय मांग की प्राप्ति की तारीख से 21 दिनों के भीतर करेगा । उसने उपाबंध पी-7 द्वारा यह भी प्रस्थापना की थी कि वह चीजों का प्रदाय 4 से 6 सप्ताह के भीतर करेगा और प्रत्यर्थी 21 दिनों के भीतर भुगतान करेंगे ।

---

[1] ए. आई. आर. 1989 दिल्ली 315.

[2] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 152.

उपाबंध पी-7 की दूसरी शर्त उपाबंध पी-3 के पांचवें निबंधन के भंग में है। इन परिस्थितियों में और उपर्युक्त न्यायिक निर्णयों को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि चीजों के प्रदाय के लिए निर्बंधित अवधि के बारे में दोनों के द्वारा की गई प्रस्थापना निश्चित और स्पष्ट नहीं है और इसलिए यह अस्पष्ट और संदेहास्पद है क्योंकि यह दोनों प्रस्तावों से भिन्न है। अतः प्रदाय के लिए निर्बंधित अवधि के संबंध में दोनों प्रस्तावों का अर्थ अनिश्चितता से ग्रसित है। उपाबंध पी-7 की तीसरी शर्त उपाबंध पी-3 के निबंधनों और शर्तों से असंगत है क्योंकि यह भुगतान के लिए ऐसी कोई समय अवधि के बारे में उपबंध नहीं करती। अतः न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि दोनों ही प्रस्थापनाएं विधिमान्य प्रस्थापनाएं नहीं हैं।

15. उपाबंध पी-3 और उपाबंध पी-7 के निबंधनों और शर्तों को दृष्टिगत करते हुए तथा ऊपर उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह सुविचारित मत है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन हस्तक्षेप करने के लिए यह एक उपयुक्त मामला नहीं है। इस रिट याचिका में कोई बल नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

रिट याचिका खारिज की गई।

मह.

भजन सिंह

बनाम

नवनिध फाइनेन्स लिमिटेड और अन्य

तारीख 14 नवंबर, 2017

न्यायमूर्ति राज मोहन सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 37, नियम 1 – धन की वसूली के लिए वाद – वादी द्वारा पास बुक के अनुसार और प्रतिवादियों द्वारा दिए गए लेख के अनुसार धन जमा करने के आधार पर वाद फाइल किया जाना – प्रतिवादी द्वारा कतिपय धन की प्राप्ति को वादी द्वारा न्यायालय से छुपाने के कथन के आधार पर वाद का विरोध – सबूत का भार – वादी द्वारा प्रतिवादी के अभिकर्ता को कतिपय धन प्रदत्त करने का कथन – यह भार वादी पर जाता है कि वह यह साबित करे कि उसने प्रतिवादी के अभिकर्ता को दिए गए धन सहित समस्त ऋण चुका दिया था – इस संबंध में निचले न्यायालय को साक्ष्य अभिलिखित करने और पक्षकारों को अवसर देने का निदेश करना न्यायोचित होगा ।

वादी-आवेदक ने वादी द्वारा जमा की गई धनराशि के आधार पर पास बुक के अनुसार तारीख 30 जून, 2015 तक के ब्याज सहित 23,81,467/- रुपए की वसूली के लिए और प्रतिवादियों द्वारा तारीख 23 जुलाई, 2013 को जारी लेख के अनुसार धनराशि की अंतिम वसूली तक 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज की वसूली के लिए वाद फाइल किया था । प्रतिवादियों ने वाद का विरोध किया । प्रतिवादियों ने आक्षेप सं. 1 में कतिपय स्पष्टीकरण के आधार पर 16,22,887/- रुपए की धनराशि का संदाय स्वीकार किया था । आवेदक ने अपर सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), मोगा द्वारा तारीख 19 जनवरी, 2017 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा भुगतान से संबंधित तथ्य को साबित करने के लिए और प्रथमतः वादी के साक्ष्य के लिए मामला नियत करने के लिए प्रतिवादियों पर भार डालने के लिए आवेदन खारिज किया गया है । पुनरीक्षण आवेदन में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यक्षतया विवाद्यक सं. 1 और 2 को साबित करने का भार वादी पर था जबकि विवाद्यक सं. 4 संपूर्ण धन के संदाय की प्राप्ति के

संबंध में न्यायालय से तथ्यों को अभिकथित रूप से छुपाने के संदर्भ में विरचित किया गया था । इस विवाद्यक को साबित करने का भार प्रतिवादियों के ऊपर डाला गया था । यह सही है कि भार अंतरित हो जाता है क्योंकि यह स्थूल नहीं है । प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन में 16,22,887/- रुपए की धनराशि के संबंध में की गई स्वीकृति के अनुसार विवाद्यक सं. 4 प्रतिवादियों को विवाद्यक सं. 4 के अधीन भार का निर्वहन करने के लिए प्रेरणा प्रदत्त करता है । प्रतिवादियों की ओर से ऋण को पूर्ण रूप से चुकाने के संबंध में भुगतान की सीमा उपदर्शित करने के लिए प्रयास लगातार किया गया है और यह बात प्रतिवादियों द्वारा किए गए पक्षकथन के प्रतिकूल जाती है । प्रतिवादियों पर विवाद्यक सं. 4 को साबित करने का भार इस प्रकार है कि संपूर्ण ऋण संव्यवहार को चुका दिया गया था जैसा कि लिखित कथन में दावा किया गया है । मामले से संबद्ध तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए आक्षेपित आदेश को अपास्त करना और यह निदेश देना न्यायोचित और उपयुक्त होगा कि विचारण न्यायालय या तो प्रतिवादियों को प्रथमत: देयों को पूर्ण रूप से चुकाने के संबंध में साक्ष्य पेश करने के लिए कहे अथवा आवश्यक विवाद्यक बनाने के पश्चात् ऐसा निदेश करे और तत्पश्चात् प्रतिवादियों को पूर्ववर्ती पैरों में इस न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों के अनुसार प्रक्रिया अपनाने के लिए कहे । (पैरा 10, 11 और 13)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 62 आर. सी. आर. 895 : **इंडियन चेन प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **अजीत नैन और एक अन्य** ।	12

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2017 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 1420.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री बी. एस. भल्ला

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री नरेश कुमार मनचंदा

न्यायमूर्ति राज मोहन सिंह – आवेदक ने अपर सिविल न्यायाधीश

(ज्येष्ठ खंड), मोगा द्वारा तारीख 19 जनवरी, 2017 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा भुगतान से संबंधित तथ्य को साबित करने के लिए और प्रथमतः वादी के साक्ष्य के लिए मामला नियत करने के लिए प्रतिवादियों पर भार डालने के लिए आवेदन खारिज किया गया है ।

2. वादी-आवेदक ने वादी द्वारा जमा की गई धनराशि के आधार पर पास बुक के अनुसार तारीख 30 जून, 2015 तक के ब्याज सहित 23,81,467/- रुपए की वसूली के लिए और प्रतिवादियों द्वारा तारीख 23 जुलाई, 2013 को जारी लेख के अनुसार धनराशि की अंतिम वसूली तक 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज की वसूली के लिए वाद फाइल किया था ।

3. वादपत्र का पैरा 3 इस प्रकार है – तारीख 23 जुलाई, 2013 को खाते का हिसाब लगाया गया था और तारीख 23 जुलाई, 2013 को प्रतिवादियों के विरुद्ध 19,20,539/- रुपए की धनराशि की बकाया पाई गई थी । प्रतिवादियों ने इस आशय का एक लेख सम्यक् रूप से जारी किया जिसकी फोटो प्रति संलग्न की गई है । प्रतिवादियों द्वारा उक्त प्रविष्टियां सम्यक् रूप से जारी पास बुक में अभिलिखित की गई हैं ।

4. प्रतिवादियों ने वाद का विरोध किया । प्रतिवादियों ने आक्षेप सं. 1 में कतिपय स्पष्टीकरण के आधार पर 16,22,887/- रुपए की धनराशि का संदाय स्वीकार किया था ।

5. प्रारंभिक आपत्ति का पैरा 1 इस प्रकार है – वादी का वाद अभिकथित धनराशि की वसूली के लिए ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि वादी ने इस बात का उल्लेख नहीं किया है और तारीख 6 फरवरी, 2015 को प्रतिवादियों से उसके द्वारा 10,000/- रुपए के भुगतान की प्राप्ति के तथ्य को छुपाया है और प्रतिवादियों से 24 मार्च, 2015 को लिए गए 25,000/- रुपए की बात को तथा प्रतिवादियों से 16 जून, 2015 को 15,87,887/- रुपए की प्राप्ति को छुपाया है इसलिए यह उल्लेख किया जाता है कि वादी ने प्रतिवादियों से ऊपर उल्लिखित भुगतान की प्राप्ति के संबंध में आंशिक धन की प्राप्ति की रसीद निष्पादित की है । प्रतिवादियों द्वारा निष्पादित मूल रसीदें लिखित कथन के साथ संलग्न की जाती हैं । यह भी निवेदन किया जाता है कि वादी उक्त तारीखों को अपनी पास बुक लेकर नहीं आया जिस पर ऊपर निर्दिष्ट भुगतान प्रतिवादियों द्वारा उसे किया गया था और यह भुगतान वादी को उससे जान पहचान के कारण

किया गया था तथापि, वादी ने वर्तमान वाद फाइल करके पास बुक में अपूर्ण प्रविष्टियों का असम्यक् फायदा लिया है और उसे तारीख 6 फरवरी, 2015, तारीख 24 मार्च, 2015 और 16 जून, 2015 को किए गए संदायों का उसने समायोजन नहीं किया है जैसाकि एतद्द्वारा संलग्न की गई रसीदों से उपदर्शित होता है । वादी ने 16 जून, 2015 के समझौते द्वारा लिखित में इस बात की सहमति भी दी है कि उसका प्रतिवादियों के साथ 16,22,887/- रुपए के लिए खाता सैटल कर दिया गया है और उसके दावे को पूर्ण रूप से संतुष्ट कर दिया गया है और वह या उसके कुटुंब का कोई सदस्य भविष्य में प्रतिवादियों के विरुद्ध इस धनराशि का दावा नहीं करेगा । यह लिखत तारीख 16 जून, 2015 की रसीद के पिछले भाग पर की गई थी और वादी द्वारा 16,22,887/- रुपए के भुगतान के पश्चात् इस पर सम्यक्तः हस्ताक्षर किए गए थे और इसलिए उपर्युक्त लेख के अनुसार प्रतिवादियों के ऊपर कोई बकाया नहीं रह जाती है और इसलिए वादी का वाद खारिज किए जाने योग्य है । प्रतिवादी नियमित रूप से कम्प्यूट्रीकृत खाता पोषित रखते हैं और वादियों और प्रतिवादियों के बीच संव्यवहार से संबंधित खाते की विवरणी की सही प्रतियां तथा प्रतिवादियों द्वारा वादियों को संदत्त उक्त धनराशि की प्रतियां एतद्द्वारा संलग्न की गई हैं ।

6. गुणदोष के आधार पर पैरा सं. 3 के जबाव में प्रतिवादियों ने यह अभिवचन किया कि पैरा 3 की अन्तर्वस्तु अभिलेख की विषयवस्तु है और इसलिए प्रारंभिक आपत्तियों में उल्लिखित तथ्यों को भी इसी संदर्भ में पढ़ा जाए ।

7. वादी ने लिखित कथन के जवाब में उत्तर फाइल किया और प्रतिवादियों द्वारा किए गए अभिकथनों के बारे में मिथ्या होने का दावा किया । वादी ने यह भी अभिवचन किया कि वादी के पुत्र अर्थात् अमन दीप सिंह ने पहले ही प्रतिवादियों की संस्था में एक खाता खोला हुआ है जिसकी सं. 623 है और उसने विभिन्न तारीखों पर धनराशि जमा की थी ।

8. प्रतिवादियों ने वादी के हस्ताक्षर कोरे कागज पर लिए हैं और यह हस्ताक्षर उस समय लिए गए थे जब वर्ष 2012 में वादी के पुत्र का खाता सं. 623 खोला गया था । रसीदों में हेरफेर करने और खाता सं. 623 में लिप्त-लेखन करने के भी अभिकथन किए गए हैं ।

9. विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

"1. क्या प्रतिवादियों ने वादी के हक में तारीख 23 जुलाई, 2014 को कोई लेख निष्पादित किया था ? ओ. पी. पी.

2. क्या वादी यथा अनुरोध किए गए रूप में ब्याज सहित 23,81,467/- रुपए की वसूली के लिए हकदार है ? ओ. पी. पी.

3. क्या वादी का वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ? ओ. पी. डी.

4. क्या वादी ने प्रतिवादियों से रसीदों द्वारा संपूर्ण भुगतान की प्राप्ति के संबंध में न्यायालय से तात्विक तथ्य छुपाए हैं ? ओ. पी. डी.

5. अनुतोष ।"

10. प्रत्यक्षतया विवाद्यक सं. 1 और 2 को साबित करने का भार वादी पर था जबकि विवाद्यक सं. 4 संपूर्ण धन के संदाय की प्राप्ति के संबंध में न्यायालय से तथ्यों को अभिकथित रूप से छुपाने के संदर्भ में विरचित किया गया था । इस विवाद्यक को साबित करने का भार प्रतिवादियों के ऊपर डाला गया था । यह सही है कि भार अंतरित हो जाता है क्योंकि यह स्थूल नहीं है ।

11. प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन में 16,22,887/- रुपए की धनराशि के संबंध में की गई स्वीकृति के अनुसार विवाद्यक सं. 4 प्रतिवादियों को विवाद्यक सं. 4 के अधीन भार का निर्वहन करने के लिए प्रेरणा प्रदत्त करता है । प्रतिवादियों की ओर से ऋण को पूर्ण रूप से चुकाने के संबंध में भुगतान की सीमा उपदर्शित करने के लिए प्रयास लगातार किया गया है और यह बात प्रतिवादियों द्वारा किए गए पक्षकथन के प्रतिकूल जाती है । प्रतिवादियों पर विवाद्यक सं. 4 को साबित करने का भार इस प्रकार है कि संपूर्ण ऋण संव्यवहार को चुका दिया गया था जैसा कि लिखित कथन में दावा किया गया है ।

12. इस संबंध में **इंडियन चेन प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **अजीत नैन और एक अन्य**[1] वाले मामले का निर्देश किया जा सकता है जिसमें न्यायालय के विचारार्थ ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हुई थी और न्यायालय ने स्थिति का विश्लेषण करने के पश्चात् निम्नलिखित रीति में मत व्यक्त किया था :–

"प्रतिवादी की ओर से यह उपदर्शित करने का सतत प्रयास

---

[1] (2014) 62 आर. सी. आर. 895.

किया गया है कि वर्ष 2006 में 2 लाख रुपए का संदाय करने के पश्चात् ऋण पूर्णतया चुका दिया गया था और यह बात प्रतिवादी द्वारा किए गए इस पक्षकथन के विपरीत जाती है कि संपूर्ण ऋण संव्यवहार वर्ष 2001 में चुका दिया गया था । यदि प्रतिवादी की यह सोच थी कि संपूर्ण ऋण वर्ष 2001 में चुका दिया गया है तब प्रतिवादी के लिए वर्ष 2006 में 2 लाख रुपए की धनराशि का संदाय करने के लिए कोई अवसर नहीं हो सकता । जब एक बार प्रतिवादियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि उन्होंने वादी से ऋण लिया है तो प्रतिवादियों द्वारा यह उपदर्शित करना आवश्यक है कि ऋण का पुनः संदाय कर दिया गया है । प्रतिवादियों ने यह कथन किया है कि वर्ष 2006 में संविदा का नवाचार हुआ है और वादी ने अपने दावे के पूर्ण और अंतिम समाधान में 2 लाख रुपए की उपर्युक्त धनराशि प्राप्त की है तो इसका यह अर्थ है कि ऋण को चुका दिया गया है । प्रतिवादी ने संविदा के नवाचार के संबंध में अभिवचन किया है न कि उसने चुकाने के बारे में अभिवचन किया है । यह उपदर्शित करने का भार प्रतिवादियों पर जाता है कि 2 लाख रुपए की उपर्युक्त धनराशि वादी द्वारा अपने देयों के पूर्ण और अंतिम भुगतान के रूप में प्राप्त की गई थी । इसके अतिरिक्त यदि प्रतिवादी अपने विवेक में यह धारणा रखते थे कि वर्ष 2006 में 2 लाख रुपए के संदाय के कारण संपूर्ण ऋण का पुनः संदाय कर दिया गया है तो किसी प्रज्ञापूर्ण कारबारी से यह स्वीकार करने की अपेक्षा की जाती है कि वे हक विलेखों को वापस करने के लिए कहते । इसके प्रतिकूल अभिलेख पर के साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादियों ने वादी से यह अनुरोध किया था कि वे वर्तमान प्रतिभूति के आधार पर अतिरिक्त ऋण देंगे । दो लाख रुपए के ऋण के लिए प्रतिभूति के रूप में बंधक का सृजन स्वीकार किया गया है । प्रतिवादियों के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि उन्होंने वर्तमान प्रतिभूति के आधार पर अतिरिक्त ऋण के लिए अनुरोध किया था । प्रतिवादी का यह अभिकथन भी साबित नहीं हुआ है कि संपूर्ण ब्याज नकद रूप में संदत्त किया गया है जैसा कि एन. के. चितलंगिया द्वारा निदेश दिया गया था और यह संदाय प्रतिवादी सं. 1 के एक प्राधिकृत अधिकारी विजय कुमार नामक व्यक्ति द्वारा किया गया है । मोहम्मद खलील शीरजी और पुत्र **बनाम** लेस टेनरीज लियोनाईसिस, (1927) 31

कलकत्ता डब्ल्यू. एन. 1 वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि जहां कोई ऋण-दाता किसी ऋण के संदाय के लिए किसी ऋणी पर वाद दायर करता है वहां यदि ऋणी व्यक्ति ऋण दाता के किसी अभिकर्ता को संदाय करने का अभिवचन करता है तो यह साबित करना ऋणी व्यक्ति का कर्तव्य है कि ऋण दाता का ऐसा कोई व्यक्ति था या ऋण दाता द्वारा ऋणी व्यक्ति के लिए ऐसा कोई व्यक्ति नियुक्त किया गया था जैसा कि कहा गया था और ऐसा व्यक्ति ऋण दाता की ओर से ऋण का संदाय प्राप्त करने के लिए ऋण दाता द्वारा प्राधिकृत था । प्रतिवादी नकद रूप में ब्याज का संदाय करने में विफल रहे हैं अथवा विजय कुमार अग्रवाल को अभिकथित प्राधिकार देने के संबंध में सबूत देने में विफल रहे हैं ।"

13. मामले से संबद्ध तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए आक्षेपित आदेश को अपास्त करना और यह निदेश देना न्यायोचित और उपयुक्त होगा कि विचारण न्यायालय या तो प्रतिवादियों को प्रथमतः देयों को पूर्ण रूप से चुकाने के संबंध में साक्ष्य पेश करने के लिए कहे अथवा आवश्यक विवाद्यक बनाने के पश्चात् ऐसा निदेश करे और तत्पश्चात् प्रतिवादियों को पूर्ववर्ती पैराओं में इस न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों के अनुसार प्रक्रिया अपनाने के लिए कहे ।

14. पुनरीक्षण आवेदन का निपटान किया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

राजेन्द्र सिंह

बनाम

नांगा उर्फ नानक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य

तारीख 5 दिसंबर, 2017

न्यायमूर्ति राजबीर सहरावत

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 53क – वादी द्वारा वाद-संपत्ति का अरजिस्ट्रीकृत करार – करार के निष्पादन के समय संपूर्ण प्रतिफल का संदाय करके वाद-भूमि का कब्जा लिया जाना – क्रेता द्वारा अपनी ओर से करार का संपूर्णतः अनुपालन – करार में विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कोई विनिर्दिष्ट तारीख या अवधि नियत न की जानी – क्रेता द्वारा युक्तियुक्त समय के भीतर विक्रय विलेख निष्पादन कराने में विफलता – विक्रेता द्वारा अपना निवास स्थान छोड़कर अन्यथा बस जाना – धारा 53क के फायदे के विरुद्ध कोई कानूनी वर्जन सृजित नहीं होता – क्रेता इस धारा का फायदा पाने का हकदार है ।

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 – धारा 53क – क्रेता द्वारा वाद-भूमि का अपने हक में करार – करार के निष्पादन के समय वाद-भूमि का कब्जा लिया जाना – कब्जे में हस्तक्षेप के विरुद्ध व्यादेश की ईप्सा – करार के निष्पादन के समय करार को रजिस्ट्रीकृत कराया जाना आवश्यक न होना – वादी-क्रेता करार को व्यादेश की मंजूरी के लिए साक्ष्य में प्रयुक्त कर सकता है – क्रेता व्यादेश का अनुतोष पाने का हकदार है ।

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 – धारा 53क – क्रेता द्वारा अपने हक में वाद-भूमि का करार – करार के निष्पादन के समय वाद-भूमि का कब्जा लिया जाना – बाद में अन्य व्यक्ति द्वारा वाद-भूमि का रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख अपने हक में कराया जाना – अन्य व्यक्ति द्वारा पूर्व क्रेता का कब्जा स्वीकार किया जाना – सद्‌भाविक क्रेता का अभिवाक् – विधिमान्यता – प्रतिवादी को पूर्व करार की जानकारी साबित होना – पश्चात्‌वर्ती क्रेता को सद्‌भाविक क्रेता नहीं माना जा सकता – पश्चात्‌वर्ती क्रेता धारा 53क के संरक्षण का फायदा पाने का हकदार नहीं है ।

इस मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि नानक सिंह ने जो वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 (जो विधिक प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिनिधित्व कर रहा है) ने यह दावा करते हुए अपनी हकदारी की घोषणा और व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था कि प्रतिवादी को वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका जाए । यह अभिवचन किया गया था कि वाद संपत्ति जिसका माप 4 मरला भूमि है, मनफूल सिंह की जो वाद में प्रतिवादी सं. 1 है और जो नानक सिंह का सगा भाई था, की मिलकियत थी । मनफूल सिंह और नानक सिंह भूमि में सह-भागीदार थे । तथापि, मनफूल सिंह ने तारीख 8 जुलाई, 1981 को नानक सिंह के साथ एक करार निष्पादित किया था । करार के अनुसार उक्त मनफूल सिंह नानक सिंह को भूमि विक्रीत करने के लिए सहमत हुआ था । उक्त संव्यवहार के लिए प्रतिफल 2,000/- रुपए नियत किया गया था । वादी नानक सिंह द्वारा संपूर्ण प्रतिफल संदत्त कर दिया गया था । करार में यह भी उल्लिखित किया गया था कि वाद भूमि का कब्जा वादी को दे दिया गया है । तथापि, विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए करार के पक्षकारों द्वारा कोई तारीख नियत नहीं की गई थी । यह भी अभिवचन किया गया था कि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क के आधार पर वादी वाद संपत्ति का स्वामी बन गया था । तथापि, राजस्व अभिलेख में सतत रूप से प्रविष्टियों का फायदा लेते हुए प्रतिवादी मनफूल सिंह ने किसी अन्य व्यक्ति के हक में उक्त संपत्ति अंतरित करने का मन बनाया । यह भी दावा किया गया था कि वादी ने प्रतिवादी से उक्त संपत्ति को अंतरित न करने के लिए कई बार अनुरोध किया । तथापि, प्रतिवादी नहीं माना । अतः वाद फाइल किया गया था । वाद में सूचना जारी की गई थी । तथापि, मनफूल सिंह पर तामील नहीं हो सकी क्योंकि वह तारीख 20 नवंबर, 2007 को राजस्थान चला गया था । वादी के काउंसेल ने यह कथन अभिलिखित कराया कि प्रतिवादी सं. 1 मनफूल सिंह की मृत्यु हो गई थी । काउंसेल का यह भी कथन है कि मनफूल सिंह ने पहले ही संपत्ति वर्तमान अपीलार्थी अर्थात् राजेन्द्र सिंह को विक्रीत कर दी थी । तद्नुसार वादी ने पश्चात्वर्ती क्रेता अर्थात् वर्तमान अपील में अपीलार्थी का नाम जोड़ने के लिए वादपत्र में संशोधन कराया जो कि वाद में प्रतिवादी सं. 2 है । संशोधन मंजूर किया गया था । प्रतिवादी के रूप में नाम जोड़े जाने के पश्चात् वर्तमान अपीलार्थी/मूल वाद में प्रतिवादी सं. 2 ने वादी के दावे का विरोध करते हुए लिखित कथन फाइल किया । यह दावा किया गया था कि वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं था और विरोध करने वाला प्रतिवादी सद्भाविक क्रेता

था ; उसने प्रतिफल दिया था और उसे कोई सूचना नहीं थी । वाद संपत्ति के ऊपर वादी के स्वामित्व के बारे में उसके द्वारा इनकार किया गया था ।. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था और वादपत्र में किए गए अभिकथनों को पुनःस्थापित/पुनः पुष्टि की गई थी । वाद संपत्ति के ऊपर वादी के कब्जे की बाबत वादपत्र में किए गए कथनों को भी दोहराया गया था । वादी द्वारा प्रतिवादी द्वारा किए गए प्रकथनों से इनकार किया गया था । तारीख 23 जुलाई, 2004 के विक्रय विलेख जिसे तारीख 3 अगस्त, 2004 को रजिस्ट्रीकृत किया गया था, और जो नए जोड़े गए प्रतिवादी के हक में था, को भी कपटपूर्ण होने के रूप में प्रश्नगत किया गया था और यह भी कहा गया था इससे प्रतिवादी को कोई हक नहीं पहुंचता है । इस निर्णय द्वारा दो नियमित द्वितीय अपीलों अर्थात् 2011 की नियमित द्वितीय अपील सं. 988 और 2011 की नियमित द्वितीय अपील सं. 4886 का निपटान किया जा रहा है । ये दोनों अपीलें दो विभिन्न वादों में पारित एक ही निर्णय से उद्भूत हुई हैं । इसलिए इन दोनों अपीलों का एक ही सामान्य आदेश द्वारा विनिश्चय किया जा रहा है । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने और उनकी सहायता से अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अपीलार्थी के काउंसेल अभिलेख के निर्देश में अपनी दलील को साबित करने में विफल रहे हैं । जहां तक वादी नानक सिंह के हक में किए गए करार का संबंध है, इसे विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही साबित मान लिया गया है । इस बारे में निष्कर्ष अंतिम बन गए हैं । अतः वर्तमान अपील में नानक सिंह के हक में किए गए करार की विधिमान्यता के संबंध में कोई विवाद नहीं है । तथापि, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि अधिनियम की धारा 53क के संघटक मामले में पूरे नहीं हुए हैं, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । अभिलेख पर यह आया है और वादी द्वारा भी यह साबित कर दिया गया है कि वाद भूमि का कब्जा प्रश्नगत करार किए जाने के समय वादी को प्रदत्त कर दिया गया था । इस तथ्य का करार में भी उल्लेख है । अतः वादी द्वारा वादी के हक में करार में उल्लिखित कब्जा दिए जाने के संबंध में परीक्षा किए गए साक्षियों का अभिसाक्ष्य भी मौजूद है । इससे यह उपदर्शित होता है कि तथ्यतः भूमि का कब्जा स्वतः करार के निष्पादन के समय वादी को प्रदत्त कर दिया गया था । प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह ने भी अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि यह बात उसकी जानकारी में थी कि अन्य सह-

अंशदारों ने अपने-अपने अंशों का कब्जा वादी नानक सिंह को दे दिया था । उसने यह बात अपनी प्रतिपरीक्षा में भी स्वीकार की है और यह बात संपत्ति के रेखांकन तथा वादी के अभिवचनों से भी साबित है । स्थल रेखांकन में वाद संपत्ति की सीमाएं उपदर्शित की गई हैं । यद्यपि प्रतिवादी ने यह प्रकथन किया है कि वादी द्वारा सीमाएं प्रतिवादी द्वारा वाद भूमि क्रय करने के पश्चात् उठाई गई हैं तथापि, वह इन पहलुओं पर कोई तर्कयुक्त साक्ष्य पेश नहीं कर सका है । अन्यथा भी चूंकि वादी अपने विक्रेता मनफूल सिंह की वाद संपत्ति में सह-अंशदार था इसलिए क्रय के पश्चात् उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह मनफूल सिंह के अंश पर भी काबिज हो गया था । अतः संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क के संघटक करार के निष्पादन के संबंध में और वादी द्वारा कब्जा लिए जाने के संबंध में साबित हो गए हैं । जहां तक करार के अग्रसरण में कुछ करने के संबंध में और वादी की ओर से करार के उसके भाग के अनुपालन के लिए उसकी तैयारी और इच्छा के संबंध में शेष संघटकों का संबंध है, उसने इन्हें भी सम्यक्तः साबित कर दिया है । अभिलेख पर यह आया है कि उसके द्वारा कब्जा लिए जाने के पश्चात् उसने वाद भूमि में सन्निर्माण करके, बोरिंग कराकर तथा अन्य उपकरण लगाकर भूमि की हैसयित को परिवर्तित कर दिया है । ऐसा उसने प्रश्नगत करार के अधीन उसे दिए गए प्राधिकार के अग्रसरण में ही किया है । जहां तक अन्य संघटकों अर्थात् वादी द्वारा अपने हक में विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए अपनी तैयारी और इच्छा का संबंध है, धारा 53क दो परिणामों के बारे में उपबंध करती है अर्थात् क्रेता को करार के अपने भाग का अनुपालन करना चाहिए अथवा विकल्पतः उसे करार के अपने भाग को पूरा करने के लिए तैयार रहना चाहिए । जैसा कि वर्तमान मामले में अभिलेख पर आया है, संविदा का भाग जिसे वादी द्वारा इस करार के बारे में अनुपालन किया जाना आवश्यक था, उसके द्वारा पहले ही पूरा कर दिया गया है, क्योंकि उसने पहले ही प्रतिफल की संपूर्ण धनराशि संदत्त कर दी थी और उसने करार के भागतः अनुपालन के रूप में वाद भूमि का कब्जा भी ले लिया था । एकमात्र बात जो इस स्थिति में की जानी आवश्यक थी, वह/विक्रेता मनफूल सिंह द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन किया जाना था । तथापि, ऐसा इसलिए नहीं किया जा सका क्योंकि मनफूल राजस्थान चले जाने के कारण निष्पादन के लिए उपलब्ध नहीं था । मात्र इस तथ्य के न होने के कारण किसी भी प्रकार से यह नहीं कहा जा सकता कि वादी ने करार के अपने भाग का

अनुपालन नहीं किया जैसा कि प्रश्नगत करार के अधीन उस पर आबद्धकर था । (पैरा 17)

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि वादी ने पहले ही संविदा के भाग का अनुपालन कर दिया है । अतः उसकी ओर से कोई अनिच्छा या लापरवाही नहीं है । उसे इस संबंध में जो कुछ करना था, वह विक्रेता द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन था । स्वीकृततः इसके लिए भी कोई तारीख विनिर्दिष्ट नहीं की गई थी । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वादी विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए विक्रेता की प्रतीक्षा करने में जब वह राजस्थान से लौटता, न्यायोचित नहीं था । अन्यथा भी विक्रय विलेख का अव्यवहित रूप से निष्पादन कराना या किसी विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर निष्पादन कराना अधिनियम की धारा 53क के अधीन आवश्यक नहीं है । अत: क्रेता द्वारा किसी युक्तियुक्त अवधि के भीतर विक्रय विलेख का निष्पादन कराने से, यद्यपि यह अवांछनीय है, विफल रहना अधिनियम की धारा 53क द्वारा गारंटीकृत क्रेता के कानूनी अधिकार के विरुद्ध कानूनी वर्जन प्रवृत्त नहीं करता । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी कार्य की वांछनीयता और ऐसे कार्य की विधिक अपेक्षा दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं । मात्र वांछनीयता का मुद्दा विधिक आवश्यकता के स्तर तक नहीं उठाया जा सकता विशेषतया जब इसे सुसंगत कानूनी उपबंध द्वारा विहित न किया गया हो । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि वादी द्वारा वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 53क के संघटक पूर्ण रूप से साबित कर दिए गए हैं । उसे उसकी हकदारी के लिए कोई घोषणा मंजूर नहीं की गई है । जहां तक व्यादेश का संबंध है, उसने वाद में इसका दावा किया है और चूंकि उसने अधिनियम की धारा 53क के संघटक पूरे कर दिए हैं इसलिए यह निर्णय उसके रास्ते में इस प्रकार बाधक नहीं हो सकता, जो उसे उसके कानूनी संरक्षण से वंचित कर सके । (पैरा 18)

अन्यथा भी संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क ऐसे किसी व्यक्ति के हक में फायदा सृजित करती है जिसने करार में उल्लिखित भूमि के कब्जे के साथ अपने हक में पूर्व करार करा लिया है । यह धारा मूल स्वामी या ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध वर्जन सृजित करती है जिसने ऐसे करार की विद्यमानता के दौरान करार में उल्लिखित भूमि के संबंध में कोई हक या अधिकार या हित सृजित होने का दावा किया हो । अतः यदि उसके कब्जे में बाधा डाली जाती है तब केवल व्यादेश के लिए वाद फाइल किया जा सकता है और ऐसा दावा ऐसे व्यक्ति द्वारा अधिनियम की धारा

53क के फायदे का दावा करते हुए व्यादेश के लिए वाद फाइल किया जा सकता है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि ऐसे व्यक्ति द्वारा उसके विरुद्ध वाद फाइल किया जाता है तो वह इसे प्रतिरक्षा के रूप में प्रयुक्त करने का हकदार होगा । अतः जहां तक कब्जे का संबंध है, जब एक बार कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 53क के फायदे का दावा करता है और वह इसके रजिस्ट्रीकरण की अपेक्षा यदि कोई हो, के साथ अधिनियम की धारा 53क के संघटकों को उपदर्शित और साबित कर देता है तब वह वादी के रूप में भी कोई वाद फाइल करने के लिए एक आधार के रूप में करार का भलीभांति प्रयोग कर सकता है । यदि उसके विरुद्ध वाद फाइल किया जाता है तो उसका उपचार प्रतिरक्षा तक सीमित नहीं है । जहां तक अपीलार्थी द्वारा उठाए गए सद्भाविक क्रेता के मुद्दे का संबंध है, यह दलील भी खारिज किए जाने योग्य है । उसने यह दावा किया है कि वह एक सद्भाविक क्रेता है । एक सद्भाविक क्रेता के रूप में उसकी प्रास्थिति के संबंध में एक विनिर्दिष्ट विवाद्यक विरचित किया गया था । इसको साबित करने का भार प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह के ऊपर था । अधिनियम की धारा 53क के परंतुक के फायदे का दावा करने के लिए प्रतिवादी द्वारा यह साबित करना आवश्यक था कि उसे वादी के संबंध में किए संव्यवहार के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । तथापि, प्रतिवादी ने यह दावा करने के सिवाय कि उसने राजस्व अभिलेख का निरीक्षण किया था, इस मुद्दे पर कोई तथ्यात्मक आधार अधिकथित नहीं किया अथवा इस बारे में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया । जहां तक राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियों का संबंध है, ये प्रविष्टियां वर्तमान मामले में सुसंगत नहीं हैं । यद्यपि भूमि सतत रूप से राजस्व अभिलेख में अभिलिखित है तथापि, पक्षकारों के बीच यह सहमति है कि यह भूमि आवासीय क्षेत्र का भाग बन चुकी है । राजस्व अभिलेख में इसे 'गैर मुमकिन खेत' (आवासीय क्षेत्र के निकट कतिपय खाली भूमि जो पशु चराने और चारा एकत्रित करने आदि के लिए प्रयुक्त की जाती है) के रूप में अभिलिखित है । इसे किसी भी प्रकार से एक कृषि भूमि के रूप में नहीं माना जा सकता । वर्तमान मामले में कृषि भूमि होने की उपधारणा इस तथ्य से भी विवर्जित होती है कि राजेन्द्र सिंह द्वारा विभाजन सिविल न्यायालय द्वारा कराए जाने का अनुरोध किया गया था न कि राजस्व प्राधिकारियों द्वारा । निचला अपील न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही है कि जब एक बार प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह ने यह स्वीकार कर लिया है कि अन्य सह-अंशदारों ने भी वादी को कब्जा दे दिया था तो उस पर यह आबद्धकर था कि वह प्रश्नगत भूमि को क्रय

करने से पूर्व वादी से भी जानकारी लेता क्योंकि स्वीकृततः वादी भी अपने विक्रेता मनफूल सिंह के साथ वाद भूमि में सह-अंशदार है । तथापि, अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला कुछ नहीं है चाहे वह अभिवचन हों, अभिसाक्ष्य हो या अन्यथा, कि प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह द्वारा मनफूल सिंह से वाद भूमि क्रय करने से पूर्व वादी से कोई पूछताछ की गई थी । अन्यथा भी अभिलेख पर के तथ्यों से ये तथ्य उपदर्शित होते हैं कि प्रतिवादी बराबर के मकान में रह रहा था । वादी द्वारा पेश किए गए स्थल रेखांकन को भी प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया गया है । इसके अतिरिक्त प्रतिवादी द्वारा यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि वादी ने करार के समय वाद भूमि का कब्जा ले लिया था या नहीं जिस पर उसने अपना हक होने या न होने का दावा किया है । यह कब्जे की प्रास्थिति के संबंध में प्रतिवादी की ओर से एक प्रकार की लापरवाही है । इससे यह भी उपदर्शित होता है कि उसे इस तथ्य की जानकारी थी कि वादी ने वादपत्र में उल्लिखित करार के निष्पादन के समय वाद भूमि का कब्जा ले लिया था । अतः वादी राजेन्द्र सिंह के लिए यह आवश्यक था कि वह उक्त भूमि को क्रय करने से पूर्व वादी से इस बारे में पूछताछ करे । अन्यथा भी चूंकि वादी पहले से ही मनफूल सिंह के साथ सह-अंशदार था इसलिए उसके बारे में यह माना जा सकता है कि वह अन्य सह अंशदारों के साथ भूमि के प्रत्येक इंच पर काबिज था । अतः चूंकि प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह द्वारा वाद भूमि को क्रय करने से पूर्व कोई युक्तियुक्त पूछताछ नहीं की गई इसलिए उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह एक सद्भाविक क्रेता है । एक अन्य पहलू जिसका उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है, यह है कि वादी नानक सिंह ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादी को नानक सिंह के हक में करार की विद्यमानता के बारे में पूरी जानकारी थी । इसके बावजूद नानक सिंह की इस विनिर्दिष्ट मुद्दे पर प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है । इससे भी यह उपदर्शित होता हे कि प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह को नानक सिंह के हक में करार की विद्यमानता के संबंध में जानकारी थी । (पैरा 20, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2016] 2016 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 592 (एस. सी.) : **गुमन सिंह और अन्य** बनाम **मांगा सिंह (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य ;** 15, 19

[2014]	2014 (3) पी. एल. आर. 56 : **जरनैल सिंह** बनाम **दलजीत सिंह और अन्य ;**	15, 18
[2012]	ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 206 : **सूरज लैम्प एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**	15
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 493 : **ए. लेविस और एक अन्य** बनाम **एम. टी. राममूर्ति और अन्य ;**	15, 18
[2006]	ए. आई. आर. 2006 पंजाब-हरियाणा 154 = 2005 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 677 : **बाल सिंह और अन्य** बनाम **रविन्दर सिंह और अन्य ;**	16, 21
[1994]	ए. आई. आर. 1994 बाम्बे 254 : **धर्मजीत** उर्फ **बब्बन बाजीराव शिन्दे** बनाम **जगन्नाथ शंकर यादव ।**	16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की नियमित द्वितीय अपील सं. 988.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अमित जैन

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पी. आर. यादव

न्यायमूर्ति राजबीर सहरावत – इस निर्णय द्वारा दो नियमित द्वितीय अपीलों अर्थात् 2011 की नियमित द्वितीय अपील सं. 988 और 2011 की नियमित द्वितीय अपील सं. 4886 का निपटान किया जा रहा है । ये दोनों अपीलें दो विभिन्न वादों में पारित एक ही निर्णय से उद्भूत हुई हैं । इसलिए इन दोनों अपीलों का एक ही सामान्य आदेश द्वारा विनिश्चय किया जा रहा है ।

2. सुविधा के लिए हमारे समक्ष पक्षकारों को वादी और प्रतिवादी के नाम से निर्दिष्ट किया जाएगा जैसा कि उन्हें नानक सिंह द्वारा फाइल किए गए वाद में उपवर्णित किया गया है ।

3. इस मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि नानक सिंह ने जो वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 (जो विधिक प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिनिधित्व कर रहा है) ने यह दावा करते हुए अपनी हकदारी की घोषणा और व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था कि प्रतिवादी को वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका जाए । यह अभिवचन किया गया था कि वाद संपत्ति जिसका माप 4 मरला भूमि है, मनफूल सिंह की जो वाद में प्रतिवादी सं. 1 है और जो नानक सिंह का सगा भाई था, की मिलकियत थी । मनफूल सिंह और नानक सिंह भूमि में सह-भागीदार थे । तथापि, मनफूल सिंह ने तारीख 8 जुलाई, 1981 को नानक सिंह के साथ एक करार निष्पादित किया था । करार के अनुसार उक्त मनफूल सिंह नानक सिंह को भूमि विक्रीत करने के लिए सहमत हुआ था । उक्त संव्यवहार के लिए प्रतिफल 2,000/- रुपए नियत किया गया था । वादी नानक सिंह द्वारा संपूर्ण प्रतिफल संदत्त कर दिया गया था । करार में यह भी उल्लिखित किया गया था कि वाद भूमि का कब्जा वादी को दे दिया गया है । तथापि, विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए करार के पक्षकारों द्वारा कोई तारीख नियत नहीं की गई थी । यह भी अभिवचन किया गया था कि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क के आधार पर वादी वाद संपत्ति का स्वामी बन गया था । तथापि, राजस्व अभिलेख में सतत रूप से प्रविष्टियों का फायदा लेते हुए प्रतिवादी मनफूल सिंह ने किसी अन्य व्यक्ति के हक में उक्त संपत्ति अंतरित करने का मन बनाया । यह भी दावा किया गया था कि वादी ने प्रतिवादी से उक्त संपत्ति को अंतरित न करने के लिए कई बार अनुरोध किया । तथापि, प्रतिवादी नहीं माना । अतः वाद फाइल किया गया था ।

4. वाद में सूचना जारी की गई थी । तथापि, मनफूल सिंह पर तामील नहीं हो सकी क्योंकि वह तारीख 20 नवंबर, 2007 को राजस्थान चला गया था । वादी के काउंसेल ने यह कथन अभिलिखित कराया कि प्रतिवादी सं. 1 मनफूल सिंह की मृत्यु हो गई थी । काउंसेल का यह भी कथन है कि मनफूल सिंह ने पहले ही संपत्ति वर्तमान अपीलार्थी अर्थात् राजेन्द्र सिंह को विक्रीत कर दी थी । तद्नुसार वादी ने पश्चात्वर्ती क्रेता अर्थात् वर्तमान अपील में अपीलार्थी का नाम जोड़ने के लिए वादपत्र में संशोधन कराया जो कि वाद में प्रतिवादी सं. 2 है । संशोधन मंजूर किया गया था । प्रतिवादी के रूप में नाम जोड़े जाने के पश्चात् वर्तमान अपीलार्थी/मूल वाद में प्रतिवादी सं. 2 ने वादी के दावे का विरोध करते हुए

लिखित कथन फाइल किया । यह दावा किया गया था कि वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं था और विरोध करने वाला प्रतिवादी सद्भाविक क्रेता था ; उसने प्रतिफल दिया था और उसे कोई सूचना नहीं थी । वाद संपत्ति के ऊपर वादी के स्वामित्व के बारे में उसके द्वारा इनकार किया गया था ।

5. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था और वादपत्र में किए गए अभिकथनों को पुनःस्थापित/पुनः पुष्टि की गई थी । वाद संपत्ति के ऊपर वादी के कब्जे की बाबत वादपत्र में किए गए कथनों को भी दोहराया गया था । वादी द्वारा प्रतिवादी द्वारा किए गए प्रकथनों से इनकार किया गया था । तारीख 23 जुलाई, 2004 के विक्रय विलेख जिसे तारीख 3 अगस्त, 2004 को रजिस्ट्रीकृत किया गया था, और जो नए जोड़े गए प्रतिवादी के हक में था, को भी कपटपूर्ण होने के रूप प्रश्नगत किया गया था और यह भी कहा गया था इससे प्रतिवादी को कोई हक नहीं पहुंचता है ।

6. विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों पर विचार करने के पश्चात् निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

(1) क्या वादी तारीख 8 जुलाई, 1981 के करार के आधार पर वाद संपत्ति का स्वामी और काबिज है यदि हां तो इसका प्रभाव ? ओ. पी. पी.

(2) क्या वादी संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क के अधीन संरक्षण के लिए हकदार है ? ओ. पी. पी.

(3) क्या वादी यथा अनुरोध किए गए स्थायी व्यादेश के अनुतोष के लिए हकदार है ? ओ. पी. पी.

(4) क्या वादी के पास वर्तमान वाद को फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक है ? ओ. पी. डी.

(5) क्या वादी ने न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए वाद संपत्ति का सही मूल्यांकन नहीं किया है ? ओ. पी. डी.

(6) क्या प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह सही मूल्य और प्रतिफल के लिए सद्भाविक क्रेता है और उसे पूर्व करार की सूचना नहीं थी यदि हां तो इसका प्रभाव ? ओ. पी. डी.

(7) क्या वर्तमान मामले में वादी का वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ?

(8) अनुतोष ।

7. तथापि, इसी दौरान नानक सिंह द्वारा फाइल किए गए वाद में प्रतिवादी अर्थात् राजेन्द्र सिंह ने भी विभाजन के लिए यह दावा करते हुए अपना वाद फाइल किया कि उक्त मनफूल सिंह ने तारीख 23 जुलाई, 2004 को उसके हक में एक विक्रय विलेख निष्पादत किया था जिसे 3 अगस्त, 2004 को रजिस्ट्रीकृत कराया गया था । उसके द्वारा यह भी निवेदन किया गया था कि इस संबंध में राजस्व अभिलेख में नामांतरण सं. 1108 की भी प्रविष्टि कर दी गई थी । अतः उसने विभाजन के जरिए वाद संपत्ति के ऊपर अपने कब्जे का दावा किया । इस वाद में नानक सिंह ने यह अभिवचन करते हुए लिखित कथन फाइल किया कि राजेन्द्र सिंह भूमि पर काबिज और स्वामी नहीं था । यह भी दावा किया गया था कि उस तारीख को जब उसके हक में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था, उसका विक्रेता मनफूल सिंह राजेन्द्र सिंह के हक में हकदारी अंतरित करने के लिए सक्षम नहीं था । विक्रय विलेख के बारे में यह कहा गया था कि वह गलत, अकृत और शून्य है । नानक सिंह के हक में करार के संबंध में अभिवचनों को उसने लिखित कथन में द्वितीय वाद में दोहराया है । द्वितीय वाद में के प्रतिवादी सं. 3 और 4 ने भी नानक सिंह के दावे का समर्थन किया है ।

8. इन अभिवचनों के आधार पर विचारण न्यायालय ने इस वाद में निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

1. क्या वादी और प्रतिवादी वाद भूमि में सह-अंशदार हैं ? ओ. पी. पी.

2. यदि विवाद्यक सं. 1 साबित हो जाता है तो क्या वादी वाद संपत्ति के विभाजन के लिए हकदार हैं ? ओ. पी. पी.

3. क्या तारीख 23 जुलाई, 2004 को निष्पादित और तारीख 3 अगस्त, 2004 को रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख विचाराधीन वाद के उपबंधों (सिद्धांत) द्वारा प्रभावित होता है और इसलिए वर्तमान वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ?

4. क्या वादियों को वर्तमान वाद को फाइल करने के लिए कोई हक नहीं है ? ओ. पी. डी.

5. क्या वादी स्वयं अपने कार्य और आचरण द्वारा वर्तमान वाद

फाइल करने से विबद्ध है ? ओ. पी. डी.

6. क्या वर्तमान वाद न्यायालय फीस की कमी से ग्रसित है ? ओ. पी. डी.

7. अनुतोष ।

9. विवाद्यक विरचित करने के पश्चात् दोनों वादों को साक्ष्य के प्रयोजन के लिए समेकित किया गया था ; नानक सिंह द्वारा फाइल किया गया वाद मुख्य वाद के रूप में माना गया था । तद्नुसार दोनों वादों में संयुक्त साक्ष्य पेश किया गया था ।

10. पक्षकारों ने अपना-अपना साक्ष्य पेश किया ।

11. विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने और साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि नानक सिंह के हक में किया गया करार विधिमान्य रूप से निष्पादित किया गया था और यह माना कि इसे वादी नानक सिंह द्वारा साबित कर दिया गया है । इसे पी. डब्ल्यू. 4 रावत सिंह और पी. डब्ल्यू. 5 फूल सिंह के परिसाक्ष्य, वादी नानक सिंह के परिसाक्ष्य और सुभाष चन्द गुप्ता के परिसाक्ष्य और करार के लेखक के परिसाक्ष्य के आधार पर साबित माना गया था ।

12. इसके प्रतिकूल प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह जो द्वितीय वाद में वादी था, के हक में तारीख 23 जुलाई, 2004 को निष्पादित विक्रय विलेख के बारे में भी यह माना गया था कि यह विक्रय विलेख पी. डब्ल्यू. 2 के परिसाक्ष्य, लेखक सत्यनारायण, पी. डब्ल्यू. 3 बनवारी लाल, सत्यापन साक्षी, पी. डब्ल्यू. 4 स्वयं राजेन्द्र सिंह द्वारा साबित कर दिया गया है ।

13. इस स्थिति को दृष्टिगत करते हुए विचारण न्यायालय ने अधिनियम की धारा 53क की प्रतिपादना पर विचार किया । विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों की दलीलों पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि नानक सिंह के वाद में प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह का पक्षकथन साबित हो गया है । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह यह साबित करने में सफल रहा है कि जब प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह ने वाद भूमि क्रय की थी तो उसे उस समय वादी के हक में किए गए करार की कोई जानकारी नहीं थी । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह इस आधार पर सद्भाविक क्रेता है कि राजस्व अभिलेख में नानक सिंह के हक में करार के बारे में कोई उल्लेख नहीं था । यह भी

अभिलिखित किया गया था कि राजेन्द्र सिंह नानक सिंह द्वारा दावा किए गए करार में एक साक्षी नहीं था । वह नानक सिंह और मनफूल सिंह का नातेदार नहीं है । अतः यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह नहीं कहा जा सकता कि राजेन्द्र सिंह को 1981 को किए गए करार की कोई जानकारी थी । अतः यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क के परंतुक का फायदा पाने का हकदार है । इसके अतिरिक्त विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी नानक सिंह यह उपदर्शित करने में विफल रहा था कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और इच्छुक था क्योंकि उसने मनफूल सिंह के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए कोई वाद फाइल नहीं किया था । तथापि, विचारण न्यायालय ने यह भी अभिलिखित किया कि यदि यह भी उपधारित कर लिया जाए कि वादी नानक सिंह विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए तैयार और इच्छुक था तो भी उसने करार को रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया था जबकि उसने कब्जा ले लिया था । अतः यह करार प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह द्वारा अधिनियम की धारा 53क के परंतुक का फायदा लेने के अपने दावे के रास्ते में बाधक नहीं था । परिणामतः संयुक्त निर्णय द्वारा वादी नानक सिंह द्वारा फाइल किया गया वाद खारिज किया गया था और प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह द्वारा फाइल किया गया प्रति-वाद डिक्री किया गया था । तद्नुसार वाद संपत्ति में उसके भाग के कब्जे के लिए और विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री मंजूर की गई थी । नानक सिंह ने निर्णय और दोनों डिक्रियों से व्यथित होकर निचले अपील न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की थीं । तथापि, राजेन्द्र सिंह ने जो नानक सिंह के वाद में प्रतिवादी था, निचले अपील न्यायालय के समक्ष कोई अपील या प्रति आक्षेप फाइल नहीं किए ।

14. तथापि, निचले अपील न्यायालय ने नानक सिंह द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया । परिणामतः राजेन्द्र सिंह के हक में पारित विभाजन की प्रारंभिक डिक्री अपास्त कर दी गई थी । नानक सिंह के वाद की खारिजी की डिक्री उलट दी गई थी और वाद स्थायी व्यादेश के संबंध में डिक्री किया गया था । निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलटते हुए यह अभिलिखित किया कि नानक सिंह के हक में करार पहले ही विचारण न्यायालय द्वारा साबित माना गया है और इसे साक्षी मनफूल सिंह द्वारा भी साबित किया गया है और वादी

नानक सिंह का कब्जा भी साबित हो गया है और तत्पश्चात् वह लगातार विवादित भूखंड में रह रहा है । अतः अधिनियम की धारा 53क के संरक्षण के प्रश्न पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । निचले अपील न्यायालय ने इस पहलू पर विचार करते हुए प्रथमतः यह अभिनिर्धारित किया कि नानक सिंह द्वारा दावा किए गए प्रश्नगत करार को रजिस्ट्रीकृत कराने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि यह पक्षकारों के बीच तारीख 24 सितंबर, 2001 को अर्थात् रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के संशोधन के पूर्व निष्पादित किया गया था । निचले अपील न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि स्वयं प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह ने यह स्वीकार करते हुए वाद संपत्ति के ऊपर अपीलार्थी नानक सिंह के कब्जे को स्वीकार किया है कि नानक सिंह ने विवादित संपत्ति में एक बोरिंग कराया था और अन्य सह-अंशदारों ने भी अपने-अपने अंशों का कब्जा अपीलार्थी नानक सिंह को दे दिया था जिसने प्रश्नगत भूखंड में सीमा दीवार बना ली है । अतः निचले अपील न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह समझा जाएगा कि राजेन्द्र सिंह को वाद संपत्ति में अपीलार्थी के हित के बारे में जानकारी थी । अतः राजेन्द्र सिंह को अपीलार्थी से उसके कब्जे की प्रकृति के बारे में मालूमात करनी चाहिए थी । चूंकि वह स्वतः अपीलार्थी से ऐसी कोई मालूमात करने में विफल रहा इसलिए प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह को सद्भाविक क्रेता नहीं माना जा सकता । अतः निचले अपील न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह अधिनियम की धारा 53क के परंतुक का फायदा पाने का हकदार नहीं है । तद्नुसार निचले अपील न्यायालय ने एक सामान्य निर्णय द्वारा नानक सिंह द्वारा फाइल की गई दोनों अपीलें मंजूर कर लीं । परिणामस्वरूप नानक सिंह का स्थायी व्यादेश के संबंध में वाद डिक्री किया गया था और इसलिए राजेन्द्र सिंह द्वारा विभाजन के लिए फाइल किया गया वाद खारिज करने का आदेश किया गया था, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है । निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध राजेन्द्र सिंह ने जो नानक सिंह द्वारा फाइल किए गए वाद में प्रतिवादी सं. 2 है, वर्तमान दोनों अपीलें फाइल की हैं ।

15. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने मामले में बहस करते हुए यह दलील दी कि निचले अपील न्यायालय ने इस आशय का निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है कि वादी नानक सिंह ने अधिनियम की धारा 53क के संघटकों को पूरा कर दिया था । अतः उन्होंने यह दलील दी है

कि अधिनियम की धारा 53क का फायदा वादी नानक सिंह को नहीं दिया जा सकता भले ही प्रतिवादी को सद्भाविक क्रेता न माना जाए यद्यपि उन्होंने यह दलील दी है कि प्रतिवादी ने अभिलेख पर यह साबित कर दिया है कि वह एक सद्भाविक क्रेता था । उसने राजस्व अभिलेख को साबित किया है जिससे यह उपदर्शित होता है कि प्रश्नगत करार के संबंध में राजस्व अभिलेख में कोई प्रविष्टि नहीं थी । तथापि, उन्होंने यह दलील दी है कि वादी नानक सिंह का कब्जा भी अनन्य नहीं है क्योंकि वाद भूमि राजेन्द्र सिंह द्वारा क्रय करने से पूर्व वादी नानक सिंह और मनफूल सिंह के साथ अन्य व्यक्तियों के नामों में अभिलिखित थी और राजेन्द्र सिंह के हक में विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् राजस्व अभिलेख में अभिलिखित नामांतरण के अनुसार राजेन्द्र सिंह के नाम में अभिलिखित थी । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि निचले अपील न्यायालय ने वादी नानक सिंह के हक में व्यादेश के लिए डिक्री मंजूर करने में विधि की गलती है क्योंकि अधिनियम की धारा 53क का अभिवाक् केवल प्रतिरक्षा के रूप में उठाया जा सकता है और व्यादेश के लिए वाद भी अधिनियम की धारा 53क पर आधारित किसी दावे में ग्राह्य नहीं है । अपीलार्थी द्वारा यह भी दावा किया गया है कि प्रतिवादी के हक में विक्रय विलेख को प्रश्नगत किए जाने के बावजूद वादी ने वाद के संशोधन द्वारा प्रतिवादी के हक में किए गए विक्रय विलेख को औपचारिक रूप से आक्षेपित नहीं किया है । अतः अपीलार्थी/प्रतिवादी के हक में किया गया विक्रय विलेख अखंडित रहा है । अंततः अपीलार्थी के काउंसेल ने पुनः इस दलील पर बल दिया है कि अधिनियम की धारा 53क के संघटक वादी नानक सिंह द्वारा साबित नहीं किए गए हैं और इसलिए वह अधिनियम की धारा 53क के फायदे का दावा नहीं कर सकता । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **सूरज लैम्प एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है और यह दलील दी है कि मात्र विक्रय के लिए करार हकदारी प्रदत्त नहीं करता और इसलिए अधिनियम की धारा 53क में निर्दिष्ट करार के आधार पर हकदारी की घोषणा के लिए वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । काउंसेल ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **ए. लेविस और एक अन्य** बनाम **एम. टी. राममूर्ति और अन्य**[2] वाले

---

[1] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 206.

[2] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 493.

मामले के निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि यदि कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 53क के फायदे के लिए लंबे समय तक दावा नहीं करता है और वह विक्रय विलेख का निष्पादन कराने के लिए कार्रवाई नहीं करता है तो उसे इस धारा का फायदा नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह अपने अधिकारों के लिए जागरूक नहीं रहा है । विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय द्वारा **जरनैल सिंह** बनाम **दलजीत सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि जहां अधिनियम की धारा 53क के संघटक पूरे नहीं होते हैं वहां करार का दावा करने वाले व्यक्ति का कब्जा न्यायालय द्वारा संरक्षित नहीं किया जाएगा । अंततः काउंसेल ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **गुमन सिंह और अन्य** बनाम **मांगा सिंह (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य**[2] वाले मामले का अपनी दलील के समर्थन में अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 53क का अभिवाक् केवल प्रतिरक्षा के रूप में लिया जा सकता है न कि वादी के रूप में कोई वाद फाइल करने के लिए सकारात्मक रूप में । इसे केवल कवच के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है न कि मुख्य उपकरण के रूप में ।

16. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी/वादी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वादी ने अभिलेख पर प्रश्नगत करार साबित कर दिया है । उन्होंने आगे यह दलील दी है कि निचले न्यायालय ने भी यह अभिनिर्धारित किया है कि मामले के अभिलेख पर करार साबित कर दिया गया है । वर्तमान अपीलार्थी द्वारा इस निष्कर्ष के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की गई है । प्रत्यर्थी के काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि उन्होंने अधिनियम की धारा 53क के अधीन यथा अपेक्षित सभी संघटक साबित कर दिए हैं । काउंसेल ने यह दलील दी कि करार के निबंधनों के अनुसार प्रतिफल की संपूर्ण धनराशि संदत्त कर दी गई थी । वादी द्वारा कब्जा पहले ही ले लिया गया था । अतः प्रत्यर्थी/वादी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार वादी की ओर से अनुपालन किए जाने के लिए अपेक्षित करार पहले ही पूरा कर दिया गया था । उसके द्वारा संपूर्ण विक्रय में करार की परिपक्वता के लिए कुछ भी किया जाना अपेक्षित नहीं था । जहां तक विक्रय विलेख के निष्पादन का संबंध है, काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि चूंकि विक्रेता मनफूल सिंह राजस्थान चला गया था और वह आगे कार्रवाई के लिए उपलब्ध नहीं

---

[1] 2014 (3) पी. एल. आर. 56.

[2] 2016 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 592 (एस. सी.).

था इसलिए उसे विक्रय विलेख निष्पादित कराने का अवसर नहीं मिला था । प्रत्यर्थी/वादी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि किसी व्यक्ति द्वारा अपने कब्जे के संरक्षण के लिए अधिनियम की धारा 53क का भलीभांति अवलंब लिया जा सकता है । काउंसेल ने इस प्रयोजन के लिए **धर्मजीत** उर्फ **बब्बन बाजीराव शिन्दे** बनाम **जगन्नाथ शंकर यादव**[1] वाले मामले का अवलंब लिया है और विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रतिवादी यह साबित करने में पूर्णतया विफल रहा है कि उसे वादी नानक सिंह के हक में किए गए करार की विद्यमानता के संबंध में कोई जानकारी नहीं थी । अतः वह अधिनियम की धारा 53क के परंतुक का संरक्षण पाने का हकदार नहीं है । काउंसेल ने यह भी दलील दी कि मात्र इस कारण कि उसके हक में किए गए करार का राजस्व अभिलेख में उल्लेख नहीं किया गया है और प्रतिवादी का दावा राजस्व अभिलेख से सत्यापित है, यह बात प्रतिवादी/क्रेता को जानकारी से विवर्जित नहीं करती क्योंकि वह वादी नानक सिंह के मकान के बराबर के मकान में ही रहता था । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय द्वारा **बाल सिंह और अन्य** बनाम **रविन्दर सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए प्रतिवादी के हक में विक्रय विलेख की विधिमान्यता के संबंध में यह दलील दी है कि चूंकि प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह का विक्रेता हक का अंतरण नहीं कर सका इसलिए प्रतिवादी द्वारा दावा किया गया विक्रय विलेख अकृत और शून्य है जैसा कि वादी द्वारा फाइल किए गए प्रत्युत्तर में दावा किया गया है ।

17. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने और उनकी सहायता से अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अपीलार्थी के काउंसेल अभिलेख के निर्देश में अपनी दलील को साबित करने में विफल रहे हैं । जहां तक वादी नानक सिंह के हक में किए गए करार का संबंध है, इसे विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही साबित मान लिया गया है । इस बारे में निष्कर्ष अंतिम बन गए हैं । अतः वर्तमान अपील में नानक सिंह के हक में किए गए करार की विधिमान्यता के संबंध में कोई विवाद नहीं है । तथापि, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि अधिनियम की धारा 53क के संघटक मामले में पूरे नहीं हुए हैं, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । अभिलेख पर यह आया है और वादी

---

[1] ए. आई. आर. 1994 बाम्बे 254.

[2] ए. आई. आर. 2006 पंजाब-हरियाणा 154 = 2005 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 677.

द्वारा भी यह साबित कर दिया गया है कि वाद भूमि का कब्जा प्रश्नगत करार किए जाने के समय वादी को प्रदत्त कर दिया गया था । इस तथ्य का करार में भी उल्लेख है । अतः वादी द्वारा वादी के हक में करार में उल्लिखित कब्जा दिए जाने के संबंध में परीक्षा किए गए साक्षियों का अभिसाक्ष्य भी मौजूद है । इससे यह उपदर्शित होता है कि तथ्यतः भूमि का कब्जा स्वतः करार के निष्पादन के समय वादी को प्रदत्त कर दिया गया था । प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह ने भी अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि यह बात उसकी जानकारी में थी कि अन्य सह-अंशदारों ने अपने-अपने अंशों का कब्जा वादी नानक सिंह को दे दिया था । उसने यह बात अपनी प्रतिपरीक्षा में भी स्वीकार की है और यह बात संपत्ति के रेखांकन तथा वादी के अभिवचनों से भी साबित है । स्थल रेखांकन में वाद संपत्ति की सीमाएं उपदर्शित की गई हैं । यद्यपि प्रतिवादी ने यह प्रकथन किया है कि वादी द्वारा सीमाएं प्रतिवादी द्वारा वाद भूमि क्रय करने के पश्चात् उठाई गई हैं तथापि, वह इन पहलुओं पर कोई तर्कयुक्त साक्ष्य पेश नहीं कर सका है । अन्यथा भी चूंकि वादी अपने विक्रेता मनफूल सिंह की वाद संपत्ति में सह-अंशदार था इसलिए क्रय के पश्चात् उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह मनफूल सिंह के अंश पर भी काबिज हो गया था । अत: संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क के संघटक करार के निष्पादन के संबंध में और वादी द्वारा कब्जा लिए जाने के संबंध में साबित हो गए हैं । जहां तक करार के अग्रसरण में कुछ करने के संबंध में और वादी की ओर से करार के उसके भाग के अनुपालन के लिए उसकी तैयारी और इच्छा के संबंध में शेष संघटकों का संबंध है, उसने इन्हें भी सम्यक्त: साबित कर दिया है । अभिलेख पर यह आया है कि उसके द्वारा कब्जा लिए जाने के पश्चात् उसने वाद भूमि में सन्निर्माण करके, बोरिंग कराकर तथा अन्य उपकरण लगाकर भूमि की हैसियत को परिवर्तित कर दिया है । ऐसा उसने प्रश्नगत करार के अधीन उसे दिए गए प्राधिकार के अग्रसरण में ही किया है । जहां तक अन्य संघटकों अर्थात् वादी द्वारा अपने हक में विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए अपनी तैयारी और इच्छा का संबंध है, धारा 53क दो परिणामों के बारे में उपबंध करती है अर्थात् क्रेता को करार के अपने भाग का अनुपालन करना चाहिए अथवा विकल्पतः उसे करार के अपने भाग को पूरा करने के लिए तैयार रहना चाहिए । जैसा कि वर्तमान मामले में अभिलेख पर आया है, संविदा का भाग जिसे वादी द्वारा इस करार के बारे में अनुपालन किया जाना आवश्यक था, उसके द्वारा पहले ही पूरा कर दिया गया है, क्योंकि उसने पहले ही

प्रतिफल की संपूर्ण धनराशि संदत्त कर दी थी और उसने करार के भागतः अनुपालन के रूप में वाद भूमि का कब्जा भी ले लिया था । एकमात्र बात जो इस स्थिति में की जानी आवश्यक थी, वह/विक्रेता मनफूल सिंह द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन किया जाना था । तथापि, ऐसा इसलिए नहीं किया जा सका क्योंकि मनफूल राजस्थान चले जाने के कारण निष्पादन के लिए उपलब्ध नहीं था । मात्र इस तथ्य के न होने के कारण किसी भी प्रकार से यह नहीं कहा जा सकता कि वादी ने करार के अपने भाग का अनुपालन नहीं किया जैसा कि प्रश्नगत करार के अधीन उस पर आबद्धकर था ।

18. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत निर्णय अपीलार्थी के पक्षकथन के लिए सहायक नहीं हैं । ये निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों से पूर्णतया भिन्न हैं । जहां तक **सूरज लैम्प एंड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड** (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्णय का संबंध है, यह निर्णय इस बिन्दु पर निर्णय है कि अधिनियम की धारा 53क में निर्दिष्ट करार को हकदारी के दावे के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता । तथापि, वर्तमान मामले में यद्यपि वादी ने हकदारी की घोषणा के लिए अनुरोध किया है, तथापि, निचले न्यायालयों द्वारा उसे यह अनुतोष प्रदत्त नहीं किया गया है । वादी को उसके कब्जे के बारे में उसके हक में केवल व्यादेश मंजूर किया गया है । अतः यह निर्णय वर्तमान मामले को लागू नहीं होता है । जहां तक **ए. लेविस और एक अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का संबंध है, यह निर्णय भी वर्तमान मामले के तथ्यों से भिन्न है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि वादी ने पहले ही संविदा के भाग का अनुपालन कर दिया है । अतः उसकी ओर से कोई अनिच्छा या लापरवाही नहीं है । उसे इस संबंध में जो कुछ करना था, वह विक्रेता द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन था । स्वीकृततः इसके लिए भी कोई तारीख विनिर्दिष्ट नहीं की गई थी । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वादी विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए विक्रेता की प्रतीक्षा करने में जब वह राजस्थान से लौटता, न्यायोचित नहीं था । अन्यथा भी विक्रय विलेख का अव्यवहित रूप से निष्पादन कराना या किसी विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर निष्पादन कराना अधिनियम की धारा 53क के अधीन आवश्यक नहीं है । अतः क्रेता द्वारा किसी युक्तियुक्त अवधि के भीतर विक्रय विलेख का निष्पादन कराने से, यद्यपि यह अवांछनीय है, विफल रहना अधिनियम की धारा 53क द्वारा गारंटीकृत क्रेता के कानूनी अधिकार के विरुद्ध कानूनी वर्जन प्रवृत्त नहीं

करता । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी कार्य की वांछनीयता और ऐसे कार्य की विधिक अपेक्षा दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं । मात्र वांछनीयता का मुद्दा विधिक आवश्यकता के स्तर तक नहीं उठाया जा सकता विशेषतया जब इसे सुसंगत कानूनी उपबंध द्वारा विहित न किया गया हो । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा **जरनैल सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्णय का लिया गया अवलंब वर्तमान मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि वादी द्वारा वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 53क के संघटक पूर्ण रूप से साबित कर दिए गए हैं । उसे उसकी हकदारी के लिए कोई घोषणा मंजूर नहीं की गई है । जहां तक व्यादेश का संबंध है, उसने वाद में इसका दावा किया है और चूंकि उसने अधिनियम की धारा 53क के संघटक पूरे कर दिए हैं इसलिए यह निर्णय उसके रास्ते में इस प्रकार बाधक नहीं हो सकता, जो उसे उसके कानूनी संरक्षण से वंचित् कर सके ।

19. अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा अवलंब लिया गया अंतिम निर्णय माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **गुमन सिंह और अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया निर्णय है जिसका यह दलील देने के लिए अवलंब लिया गया है कि अधिनियम की धारा 53क का अभिवाक् केवल प्रतिरक्षा के रूप में लिया जा सकता है और इसे वादी के रूप में वाद फाइल करने के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता । तथापि, यह निर्णय भी वर्तमान मामले को लागू नहीं होता है । इस निर्णय के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में हकदारी/स्वामित्व के लिए वाद में अपना मत व्यक्त किया है । अतः यह अभिनिर्धारित किया गया है चूंकि स्वामित्व साबित नहीं हुआ था इसलिए स्वामित्व के प्रयोजन के लिए व्यक्ति द्वारा अधिनियम की धारा 53क के संबंध में इस मामले में दावा किए गए करार को हकदारी का दावा करने के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता । जहां तक कब्जे के संरक्षण का दावा करने का संबंध है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस बारे में विधि अधिकिथित नहीं की है जैसा कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दावा किया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने केवल यह मत व्यक्त किया है कि चूंकि अधिनियम की धारा 53क का फायदा पाने के लिए व्यक्ति द्वारा दावा किए गए संव्यवहार को रजिस्ट्रीकृत किया जाना अनिवार्य था और चूंकि उसे रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया गया था इसलिए उसे किसी प्रयोजन के लिए साक्ष्य में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, वह चाहे उसके

फायदे के लिए हो । अतः यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उसकी ओर से व्यादेश के लिए फाइल किया गया वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं था । तथापि, वर्तमान मामले में जैसी कि ऊपर अवेक्षा की गई है निचले अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत करार को रजिस्ट्रीकृत कराने की आवश्यकता नहीं थी । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वादी का वाद व्यादेश के प्रयोजन के लिए भी उचित नहीं हो सकता जैसा कि उनके द्वारा दावा किया गया है । अतः निचले न्यायालय ने वादी के हक में व्यादेश ठीक ही मंजूर किया है ।

20. अन्यथा भी संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क ऐसे किसी व्यक्ति के हक में फायदा सृजित करती है जिसने करार में उल्लिखित भूमि के कब्जे के साथ अपने हक में पूर्व करार करा लिया है । यह धारा मूल स्वामी या ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध वर्जन सृजित करती है जिसने ऐसे करार की विद्यमानता के दौरान करार में उल्लिखित भूमि के संबंध में कोई हक या अधिकार या हित सृजित होने का दावा किया हो । अतः यदि उसके कब्जे में बाधा डाली जाती है तब केवल व्यादेश के लिए वाद फाइल किया जा सकता है और ऐसा दावा ऐसे व्यक्ति द्वारा अधिनियम की धारा 53क के फायदे का दावा करते हुए व्यादेश के लिए वाद फाइल किया जा सकता है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि ऐसे व्यक्ति द्वारा उसके विरुद्ध वाद फाइल किया जाता है तो वह इसे प्रतिरक्षा के रूप में प्रयुक्त करने का हकदार होगा । अतः जहां तक कब्जे का संबंध है, जब एक बार कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 53क के फायदे का दावा करता है और वह इसके रजिस्ट्रीकरण की अपेक्षा यदि कोई हो, के साथ अधिनियम की धारा 53क के संघटकों को उपदर्शित और साबित कर देता है तब वह वादी के रूप में भी कोई वाद फाइल करने के लिए एक आधार के रूप में करार का भलीभांति प्रयोग कर सकता है । यदि उसके विरुद्ध वाद फाइल किया जाता है तो उसका उपचार प्रतिरक्षा तक सीमित नहीं है ।

21. जहां तक अपीलार्थी द्वारा उठाए गए सद्भाविक क्रेता के मुद्दे का संबंध है, यह दलील भी खारिज किए जाने योग्य है । उसने यह दावा किया है कि वह एक सद्भाविक क्रेता है । एक सद्भाविक क्रेता के रूप में उसकी प्रास्थिति के संबंध में एक विनिर्दिष्ट विवाद्यक विरचित किया गया था । इसको साबित करने का भार प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह के ऊपर था । अधिनियम की धारा 53क के परंतुक के फायदे का दावा करने के लिए

प्रतिवादी द्वारा यह साबित करना आवश्यक था कि उसे वादी के संबंध में किए गए संव्यवहार के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । तथापि, प्रतिवादी ने यह दावा करने के सिवाय कि उसने राजस्व अभिलेख का निरीक्षण किया था, इस मुद्दे पर कोई तथ्यात्मक आधार अधिकथित नहीं किया अथवा इस बारे में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया । जहां तक राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियों का संबंध है, ये प्रविष्टियां वर्तमान मामले में सुसंगत नहीं हैं । यद्यपि भूमि सतत् रूप से राजस्व अभिलेख में अभिलिखित है तथापि, पक्षकारों के बीच यह सहमति है कि यह भूमि आवासीय क्षेत्र का भाग बन चुकी है । राजस्व अभिलेख में इसे 'गैर मुमकिन खेत' (आवासीय क्षेत्र के निकट कतिपय खाली भूमि जो पशु चराने और चारा एकत्रित करने आदि के लिए प्रयुक्त की जाती है) के रूप में अभिलिखित है । इसे किसी भी प्रकार से एक कृषि भूमि के रूप में नहीं माना जा सकता । वर्तमान मामले में कृषि भूमि होने की उपधारणा इस तथ्य से भी विवर्जित होती है कि राजेन्द्र सिंह द्वारा विभाजन सिविल न्यायालय द्वारा कराए जाने का अनुरोध किया गया था न कि राजस्व प्राधिकारियों द्वारा । इसे दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय द्वारा **बाल सिंह और अन्य** बनाम **रविन्दर सिंह और अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया निर्णय पूर्णतया लागू होता है ।

22. निचला अपील न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही है कि जब एक बार प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह ने यह स्वीकार कर लिया है कि अन्य सह-अंशदारों ने भी वादी को कब्जा दे दिया था तो उस पर यह आबद्धकर था कि वह प्रश्नगत भूमि को क्रय करने से पूर्व वादी से भी जानकारी लेता क्योंकि स्वीकृततः वादी भी अपने विक्रेता मनफूल सिंह के साथ वाद भूमि में सह-अंशदार है । तथापि, अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला कुछ नहीं है चाहे वह अभिवचन हों, अभिसाक्ष्य हो या अन्यथा, कि प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह द्वारा मनफूल सिंह से वाद भूमि क्रय करने से पूर्व वादी से कोई पूछताछ की गई थी । अन्यथा भी अभिलेख पर के तथ्यों से ये तथ्य उपदर्शित होते हैं कि प्रतिवादी बराबर के मकान में रह रहा था । वादी द्वारा पेश किए गए स्थल रेखांकन को भी प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया गया है । इसके अतिरिक्त प्रतिवादी द्वारा यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि वादी ने करार के समय वाद भूमि का कब्जा ले लिया था या नहीं जिस पर उसने अपना हक होने या न होने का दावा किया है । यह कब्जे की प्रास्थिति के संबंध में प्रतिवादी की ओर से एक प्रकार की लापरवाही है । इससे यह भी उपदर्शित होता है कि उसे

इस तथ्य की जानकारी थी कि वादी, ने वादपत्र में उल्लिखित करार के निष्पादन के समय वाद भूमि का कब्जा ले लिया था । अत: वादी राजेन्द्र सिंह के लिए यह आवश्यक था कि वह उक्त भूमि को क्रय करने से पूर्व वादी से इस बारे में पूछताछ करे । अन्यथा भी चूंकि वादी पहले से ही मनफूल सिंह के साथ सह-अंशदार था इसलिए उसके बारे में यह माना जा सकता है कि वह अन्य सह अंशदारों के साथ भूमि के प्रत्येक इंच पर काबिज था । अतः चूंकि प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह द्वारा वाद भूमि को क्रय करने से पूर्व कोई युक्तियुक्त पूछताछ नहीं की गई इसलिए उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह एक सद्भाविक क्रेता है । एक अन्य पहलू जिसका उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है, यह है कि वादी नानक सिंह ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादी को नानक सिंह के हक में करार की विद्यमानता के बारे में पूरी जानकारी थी । इसके बावजूद नानक सिंह की इस विनिर्दिष्ट मुद्दे पर प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है । इससे भी यह उपदर्शित होता हे कि प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह को नानक सिंह के हक में करार की विद्यमानता के संबंध में जानकारी थी ।

23. अन्य कोई दलील नहीं दी गई है ।

24. अतः चूंकि निचले अपील न्यायालय के निष्कर्षों में कोई अनुचितता नहीं है इसलिए निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है ।

25. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए दोनों अपीलों में कोई बल न होने के कारण ये खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

मह.

फखरुद्दीन अली अहमद

बनाम

तबस्सुम फातिमा फखरुद्दीन अली अहमद

तारीख 6 अक्तूबर, 2017

न्यायमूर्ति (डा.) रविरंजन और न्यायमूर्ति एस. कुमार

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) – धारा 25 – अवयस्कों की अभिरक्षा के लिए पिता द्वारा आवेदन – नैसर्गिक संरक्षकता – अवयस्कों की अभिरक्षा का विनिश्चय करते समय मात्र पक्षकारों के अधिकारों पर ही नहीं अपितु अवयस्कों के कल्याण और बेहतरी को भी विचार में लिया जाना चाहिए ।

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 – धारा 25 [सपठित मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के सिद्धांतों की धारा 354(2)] – अवयस्क बच्चों की अभिरक्षा – बच्चे आरंभ से ही माता की देख-भाल में रहना – पुत्र की आयु 7 वर्ष पूरी होने पर पिता द्वारा अभिरक्षा के लिए आवेदन – पिता द्वारा लंबी अवधि तक बच्चों से संपर्क करने का कोई प्रयास न किया जाना – न्यायालय द्वारा बच्चों से पूछे जाने पर बच्चों द्वारा माता के पास रहने की इच्छा व्यक्त करना – माता द्वारा अध्यापक के रूप में सेवारत होने के कारण बच्चों का भरणपोषण करने और शिक्षा प्रदान करने के लिए सक्षम होना – माता बच्चों की अभिरक्षा के लिए हकदार है तथापि,, पिता को बच्चों से समय-समय पर मिलने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि याची-अपीलार्थी ने संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 9 और 25 तथा मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के सिद्धांतों की धारा 357 के अधीन अपने अवयस्क पुत्र अरमान की अभिरक्षा और संरक्षकता के लिए एक मामला फाइल किया था । अवयस्क पुत्र अरमान की आयु 7 वर्ष है । याची-अपीलार्थी ने बच्चों के कल्याण और स्वास्थ्य के आधार पर अपनी अयवस्क पुत्री अलीजा की अभिरक्षा के लिए भी यह कहते हुए मामला फाइल किया था कि बच्चों की अभिरक्षा माता के हाथ में सुरक्षित नहीं है । यह प्रकीर्ण अपील 2013 के संरक्षकता मामला सं. 11 में विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय,

पटना द्वारा तारीख 18 जून, 2014 को पारित उस आदेश को अपास्त करने के लिए फाइल की गई है जिसके द्वारा याची-अपीलार्थी द्वारा अपने पुत्र और पुत्री की अभिरक्षा और संरक्षकता के लिए फाइल किए गए मामले को खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी ने यह भी अभिवचन किया है कि उसने पटना विश्वविद्यालय से एम. ए. एल. एल. बी. की डिग्री प्राप्त की है और उसे कम्प्यूटर संचालन करना भी आता है और उसने पटना के स्कूल में 10+2 अध्ययन किया है और वह अपने बच्चों का भरणपोषण करने की स्थिति में है । अतः अपीलार्थी-पति उसके बच्चों की अभिरक्षा पाने का हकदार नहीं है । कुल 6 साक्षियों की परीक्षा कराई गई है जिनमें दोनों पक्षों के तीन-तीन साक्षी हैं । दोनों पक्षों द्वारा दस्तावेजी साक्ष्यों को भी प्रदर्शित किया गया है । पिता बच्चे का नैसर्गिक संरक्षक और अभिरक्षक है । संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 और मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के अधीन 7 वर्ष की आयु पूरी कर लेने के पश्चात् पिता अवयस्क का नैसर्गिक संरक्षक होता है और उसे संरक्षक बनने के लिए अनुपयुक्त घोषित न करते हुए, उसे अवयस्क बालक की अभिरक्षा दी जानी चाहिए । अपीलार्थी ने यह भी दलील दी है कि उसकी वित्तीय स्थिति प्रत्यर्थी की अपेक्षा बेहतर है इसलिए बच्चे की अभिरक्षा उसे दी जानी चाहिए । अपीलार्थी-पिता अवयस्क बच्चों के हित का संरक्षण करने के लिए अधिक उपयुक्त है और वह बच्चों के लिए अपेक्षित मानक शिक्षा प्रदान करने के लिए अधिक उपयुक्त है । चूंकि अपीलार्थी-पिता केन्द्र सरकार के अधीन एक अधिकारी है इसलिए उसके पास बच्चों की शिक्षा और कल्याण तथा देखभाल के लिए अधिक सुविधाएं हैं । यद्यपि पिता नैसर्गिक संरक्षक है, तथापि, वह स्वतः अभिरक्षा पाने के लिए हकदार नहीं होगा । अवयस्क का कल्याण प्राथमिक विचारण है और अवयस्कों की अभिरक्षा के लिए मात्र पक्षकारों के अधिकार के आधार पर विचार करके विनिश्चय नहीं किया जा सकता । (पैरा 6, 8 और 12)

न्यायालय ने अपने कक्ष-सदन में लड़का और लड़की दोनों से पूछताछ की । लड़का और लड़की दोनों उनसे पूछे गए प्रश्नों को समझते हैं और इसके पश्चात् उन्होंने उत्तर दिए हैं । लड़का और लड़की के साक्षात्कार के समय उन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा कि वे सतत् रूप से अपनी माता के साथ रहना चाहते हैं क्योंकि माता प्यार और स्नेह के साथ उनकी देखभाल कर रही है और वे अपने पिता के साथ नहीं जाना चाहते । बच्चों ने अपनी माता के साथ रहने के लिए ही अपनी इच्छा व्यक्त की है । न्यायालय के

लिए महत्वपूर्ण बात बच्चों के कल्याण पर विचार करना है । बच्चों के कल्याण को केवल धन से नहीं मापा जा सकता । अवयस्क बच्चे कई वर्षों तक अपनी माता के साथ रहे हैं और माता ने उनकी ठीक प्रकार से देखभाल की है और इस दौरान अवयस्कों के पिता ने अवयस्कों में अपनी कोई दिलचस्पी उपदर्शित नहीं की थी । अभिरक्षा के विवाद्यक पर विचार करते समय इस परिस्थिति की उपेक्षा नहीं की जा सकती । बच्चे पिछले कई वर्षों से अपनी माता के साथ रह रहे हैं और इस स्तर पर उन्हें माता से पृथक् करना बच्चों की मानसिक स्थिति और बच्चों की शिक्षा को प्रभावित करेगा । यह अभिकथित किया गया है कि वर्ष 2010 में बच्चों के अलग होने के पश्चात् अपीलार्थी का बच्चों के साथ कोई भावनात्मक संबंध नहीं रहा है । पिता ने बच्चों को छोड़ने के पश्चात् कभी दिल्ली टेलीफोन पर बच्चों से बात नहीं की है अथवा उनके कल्याण के बारे में पूछताछ नहीं की है । तथापि, न्यायालय यह नहीं चाहता कि बच्चे अपने नैसर्गिक पिता के जिसे बढ़ते हुए बच्चों की सहायता करने का अधिकार है, प्रेम और स्नेह से वंचित रहें । बच्चों को अपने नैसर्गिक पिता से भी पर्याप्त सहायता और स्नेह मिलना चाहिए । प्रत्यर्थी को, अपीलार्थी-पिता को बच्चों को देखने आने के लिए नहीं रोकना चाहिए और प्रत्यर्थी को, अपीलार्थी के लिए उसके बच्चों के मिलने के लिए आवश्यक प्रबंध करना चाहिए । प्रत्यर्थी बच्चों को उनके पिता से कोई उपहार प्राप्त करने से नहीं रोकेगी । पिता को बच्चों से मिलने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए और धीरे-धीरे बच्चों से पिता को नातेदारी विकसित करना चाहिए जिसकी इस समय पूर्णतया कमी है । न्यायालय इस तथ्य के प्रति सचेत है कि प्रारंभिक स्तर पर प्रत्यर्थी-माता कार्यरत नहीं थी और उसके पास स्वयं का और बच्चों का भरणपोषण करने के लिए आय का कोई स्वतंत्र स्रोत नहीं था । तथापि, बाद में वह अध्यापक के रूप में कार्य करने लगी और उसने शिक्षा स्नातक पाठयक्रम में प्रवेश भी ले लिया है । इस समय वह अच्छा वेतन प्राप्त कर रही है और बेहतर स्थिति में है । न्यायालय इस तथ्य के प्रति भी सचेत है कि बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के खर्चे अपीलार्थी-पिता द्वारा प्रत्यर्थी-माता को दिए गए भरणपोषण से पूरे होते हैं । तथापि, इस तथ्य को भी स्वीकार किया गया है कि अपीलार्थी-पिता उस स्थान पर कभी नहीं गया जहां बच्चे रहते हैं अथवा उसने अभिरक्षा-दावा फाइल करने से पूर्व अपने बच्चों से संपर्क नहीं किया । इस समय बच्चे अपने पिता से भावनात्मक रूप से जुड़े हुए नहीं हैं और इसलिए बच्चे उसके साथ जाने के लिए तैयार नहीं हैं । दोनों बच्चे प्रत्यर्थी-माता और उसके कुटुंब के साथ रह रहे हैं और पटना में

विख्यात स्कूलों में अध्ययन कर रहे हैं । प्रत्यर्थी-माता अपने पुत्र और पुत्री की समुचित देखभाल करते हुए ध्यान दे रही है और यह एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जिस पर बच्चों के कल्याण के लिए विचार किया जाना चाहिए । पुत्र और पुत्री दोनों ही प्रत्यर्थी-माता के साथ रह रहे हैं जिसके कारण उनके बीच एक प्रबल भावनात्मक रिश्ता उत्पन्न हो गया है और स्थान के परिवर्तन से उनके अध्ययन और भविष्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । न्यायलय का यह मत है कि वर्तमान मामले में कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं है । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला कुछ नहीं है कि बच्चों का कल्याण किसी भी प्रकार से माता के हाथों खतरे में पड़ जाएगा । बच्चों की स्थायित्वता और सुरक्षा बच्चों की प्रतिभा और व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के लिए एक आवश्यक संघटक है । प्रत्यर्थी एक सरकारी विद्यालय में अध्यापक है । बच्चे पटना में एक अच्छे विद्यालय में अध्ययन कर रहे हैं और इसलिए किसी भी प्रकार का परिवर्तन बच्चों की भावनात्मक स्थिति को प्रभावित कर सकता है । इन परिस्थितियों के अधीन और बच्चों के कल्याण के संबंध में प्राथमिक रूप से विचार को ध्यान में रखते हुए न्यायालय इस बात से सहमत है कि बच्चे जो माता की अभिरक्षा में हैं, यदि आगे भी माता की अभिरक्षा में रहते हैं तो बच्चों का हित और कल्याण बेहतर रूप से सुरक्षित रहेगा । न्यायालय के मतानुसार बच्चों की अभिरक्षा में हस्तक्षेप करना वांछनीय नहीं है और इसलिए कुटुंब न्यायालय का आदेश जो पिता को मिलने के अधिकारों के साथ किया गया है, कायम रखे जाने योग्य है । (पैरा 13, 14, 15, 16, 17, 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2012) एस. सी. सी. 471 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 102 : **गायत्री बजाज** बनाम **जीतन भल्ला ;**	18
[2008]	(2008) 9 एस. सी. सी. 413 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. (सप्ली.) 732 : **नील रतन कुंडू और एक अन्य** बनाम **अभिजीत कुंडू ;**	10

[2008]	(2008) 7 एस. सी. सी. 663 : **रवीन्द्र सिंह** बनाम **फाइनेंशियल कमिश्नर, को-आपरेशन, पंजाब और अन्य ;**	10
[1983]	ए. आई. आर. 1983 आंध्र प्रदेश 106 : **मोहम्मद जमील अहमद अंसारी** बनाम **इशरत साजिदा और अन्य ;**	10
[1973]	(1973) 1 एस. सी. सी. 840 = ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2090 : **रोजी जेकेब** बनाम **जेकेब ए. चक्रमक्कल ;**	10
[1964]	ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 358 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सिंघाड़ा सिंह और अन्य ।**	10

अपीली (सिविल प्रकीर्ण) अधिकारिता : 2014 की प्रकीर्ण अपील सं. 482.

2013 के संरक्षकता मामला सं. 11 में मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, पटना द्वारा तारीख 18 जून, 2014 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध सिविल प्रकीर्ण अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एस. एस. द्विवेदी

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री चक्रपाणि, संजय कुमार सिंह, मधुरेश सिंह, आशुतोष कुमार और अमृतांशु उद्धव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – यह प्रकीर्ण अपील 2013 के संरक्षकता मामला सं. 11 में विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, पटना द्वारा तारीख 18 जून, 2014 को पारित उस आदेश को अपास्त करने के लिए फाइल की गई है जिसके द्वारा याची-अपीलार्थी द्वारा अपने पुत्र और पुत्री की अभिरक्षा और संरक्षकता के लिए फाइल किए गए मामले को खारिज किया गया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि याची-अपीलार्थी ने संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 9 और 25 तथा मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के सिद्धांतों की धारा 357 के अधीन अपने अवयस्क पुत्र अरमान की अभिरक्षा और संरक्षकता के लिए एक मामला फाइल किया

था । अवयस्क पुत्र अरमान की आयु 7 वर्ष है । याची-अपीलार्थी ने बच्चों के कल्याण और स्वास्थ्य के आधार पर अपनी अयवस्क पुत्री अलीजा की अभिरक्षा के लिए भी यह कहते हुए मामला फाइल किया था कि बच्चों की अभिरक्षा माता के हाथ में सुरक्षित नहीं है ।

3. अपीलार्थी-पिता विदेश मंत्रालय में प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्य कर रहा है और अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह तारीख 22 दिसंबर, 2003 को संपन्न हुआ था । उनके विवाह से तारीख 21 मई, 2006 को एक पुत्र और तारीख 7 फरवरी, 2008 को एक पुत्री का जन्म हुआ । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी-पत्नी विवाह के एक मास के पश्चात् अपने पति से पटना में एक फ्लैट की मांग करने लगी । मतभेद इस सीमा तक बढ़ गए कि दोनों पिछले चार सालों से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और दोनों के बीच अनेक मुकदमें चल रहे हैं । प्रत्यर्थी-पत्नी ने पति के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अधीन मामला फाइल किया जो आलमगंज थाने में 2010 का मामला सं. 262 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया और अपीलार्थी के विरुद्ध दूसरा मामला जी. आर. पी. थाने में 2013 के मामला सं. 249 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । प्रत्यर्थी-पत्नी ने एक भरणपोषण मामला भी फाइल किया है जिसकी सं.12/एम/2011 है, जो अपर कुटुंब न्यायालय, पटना के न्यायालय में लंबित है । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध मांग और उद्दापन का मामला फाइल किया जिसे 2013 के मामला सं. 79 के रूप में पुलिस थाना ढाका में रजिस्ट्रीकृत किया गया । अपीलार्थी का पुत्र और पुत्री अपनी माता के साथ पटना में अपने नाना के मकान में रह रहे हैं और यह अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्य अपीलार्थी को उससे मिलने नहीं देते हैं । अपीलार्थी के बच्चों को उसकी माता से धन की कमी और गरीबी के कारण समुचित प्रेम, देखभाल, शिक्षा और चिकित्सीय सुविधाएं नहीं मिल रही हैं क्योंकि प्रत्यर्थी के पिता सेवानिवृत्त हो चुके हैं । चूंकि पुत्र ने 7 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है और अपीलार्थी उसका नैसर्गिक संरक्षक है इसलिए अपीलार्थी ने मुस्लिम स्वीय विधि के सिद्धांतों के अधीन अपने पुत्र और पुत्री की अभिरक्षा के लिए वर्तमान मामला फाइल किया था जो तारीख 18 जून, 2014 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था ।

4. प्रत्यर्थी-पत्नी का पक्षकथन जैसा कि अभिवचन किया गया है, यह है कि अपील विधितः और तथ्यतः ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और

असद्भाविक आशय के साथ फाइल की गई है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के विवाह के पश्चात् प्रत्यर्थी अपनी ससुराल मोतीहारी चली गई । ससुराल पहुंचने के 3-4 दिन के पश्चात् अपीलार्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने पटना में एक फ्लैट की मांग को लेकर प्रताड़ित करना आरंभ कर दिया । प्रत्यर्थी ने आगे यह अभिकथित किया है कि उक्त मांग को पूरा न करने के कारण अपीलार्थी उसे नई दिल्ली अपनी तैनाती के स्थान पर नहीं ले गया और उसके ससुराल वाले भी उसे उसके पति के पास भेजने के लिए तैयार नहीं हुए । तथापि, प्रत्यर्थी के पिता के अत्यधिक जोर देने पर उसे दिल्ली ले जाया गया था जहां वह गर्भवती हो गई थी और उसे बच्चे की पैदाईश के लिए उसके पिता के मकान पर भेज दिया गया था । प्रत्यर्थी ने तारीख 21 मई, 2006 को पटना में एक पुत्र को जन्म दिया था और न तो अपीलार्थी और न ही अपीलार्थी के पिता बच्चे को देखने आए । प्रत्यर्थी ने यह भी कथन किया है कि उसके पति का नई दिल्ली से ईरान स्थानांतरण हो गया था और उसे उसके पुत्र के साथ ईरान ले जाया गया था और अत्यधिक जोर देने पर उसे लगभग 9 मास तक रुकने के लिए अनुज्ञात किया गया था तथापि, अपीलार्थी ने पटना में एक फ्लैट की मांग पूरा न करने के कारण उसकी पूरी तरह उपेक्षा की । प्रत्यर्थी पुनः गर्भवती हो गई और उसने तारीख 7 फरवरी, 2008 को पटना में अपने माता-पिता के मकान पर एक पुत्री को जन्म दिया और पैदायश के समस्त खर्चे उसके पिता द्वारा उठाए गए थे और उस समय उत्पन्न पुत्री को देखने के लिए उसकी ससुराल से कोई भी नहीं आया ।

5. जब प्रत्यर्थी पुत्री के जन्म के डेढ़ वर्ष पश्चात् तारीख 31 जुलाई, 2009 को अपनी ससुराल और तत्पश्चात् दिल्ली गई थी तो इस अवधि के दौरान सतत् रूप से पटना में फ्लैट की मांग की जाती रही । प्रत्यर्थी के पुत्र को मोतीहारी में रखा गया था और उसे दिल्ली में प्रत्यर्थी के साथ जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया गया था । प्रत्यर्थी के श्वसुर ने लिखित रूप में यह आश्वासन दिया था कि बकर-ईद के त्यौहार के पश्चात् उसके पुत्र को दिल्ली भेज दिया जाएगा । प्रत्यर्थी ने यह भी अभिकथित किया है कि उस पर आत्महत्या टिप्पण लिखने के लिए जोर दिया गया था जो उसने नहीं लिखा और उस पर शारीरिक हमला किया गया था और समस्त आभूषण छीन लिए गए थे । जब दोनों दिल्ली आए तो उसे उसके पुत्र से अलग रखने के लिए पटना में उसके मायके छोड़ दिया गया था और इन परिस्थितियों के अधीन प्रत्यर्थी ने तारीख 1 जनवरी, 2010 को प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी जो पुलिस थाना आलमगंज में 2010 के मामला सं. 262 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई थी जिसमें पुलिस ने उसके पुत्र को उसकी ससुराल से अर्थात् ग्राम सारथा, जिला मोतीहारी से बरामद किया था और तद्नुसार पटना सिटी न्यायालय में पेश किया था जहां से प्रत्यर्थी न्यायालय के आदेशों के अधीन अपने पुत्र को वापस ले आई थी । प्रत्यर्थी ने यह भी अभिकथित किया है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी और उसके बच्चों को परित्यक्त कर दिया था और जिसके कारण उसने भरणपोषण मामला सं. 12/एम/2011 फाइल किया था और न्यायालय द्वारा अंतिम भरणपोषण धनराशि संदाय करने के लिए आदेश करने के बावजूद अपीलार्थी ने उक्त आदेश का भी अनुपालन नहीं किया । प्रत्यर्थी ने यह भी कथन किया कि विद्वान् एस. डी. जे. एम., पटना सिटी द्वारा तारीख 13 अगस्त, 2013 को पारित आदेश के अनुसरण में जब वह अपने पति-अपीलार्थी के साथ दिल्ली गई तो उस पर रास्ते में हमला किया गया था जिसके कारण उसे गंभीर क्षतियां पहुंची थीं । उसे मुगलसराय स्टेशन पर प्राथमिक उपचार दिया गया था और उसे पटना वापस जाने के लिए मजबूर किया गया था । इसके पश्चात् से वह अपने दो बच्चों के साथ पटना स्थित अपने माता-पिता के मकान पर रह रही है ।

6. प्रत्यर्थी ने यह भी अभिवचन किया है कि उसने पटना विश्वविद्यालय से एम. ए. एल. एल. बी. की डिग्री प्राप्त की है और उसे कम्प्यूटर संचालन करना भी आता है और उसने पटना के स्कूल में 10+2 अध्ययन किया है और वह अपने बच्चों का भरणपोषण करने की स्थिति में है । अतः अपीलार्थी-पति उसके बच्चों की अभिरक्षा पाने का हकदार नहीं है । कुल 6 साक्षियों की परीक्षा कराई गई है जिनमें दोनों पक्षों के तीन-तीन साक्षी हैं । दोनों पक्षों द्वारा दस्तावेजी साक्ष्यों को भी प्रदर्शित किया गया है ।

7. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एस. एस. द्विवेदी द्वारा बल देकर यह दलील दी गई है कि मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के सिद्धांतों की धारा 355 के साथ पठित 357 के अधीन जहां कोई बालक 7 वर्ष से अधिक आयु प्राप्त कर लेता है वहां पिता अभिरक्षा पाने का हकदार होता है । यदि पिता उपलब्ध नहीं है तब पिता के पैतृक नातेदार बच्चे की अभिरक्षा लेने के लिए हकदार हैं जैसा कि मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के सिद्धांतों की धारा 357 के अधीन स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया गया है । उन्होंने यह भी दलील दी

कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 17 मुल्ला कृत मुस्लिम विधि की धारा 351 के सदृश है जिसमें यह अधिकथित किया गया है कि किसी अवयस्क के लिए संरक्षक की नियुक्ति पर विचार करते समय न्यायालय इस धारा के उपबंधों के अध्यधीन संगत रूप से उस विधि से भी निदेशित होगा जिससे अवयस्क संबंधित है और यह अवयस्क के कल्याण के लिए परिस्थितियों से प्रतीत होगा । इसके अतिरिक्त न्यायालय अवयस्क की आयु, लिंग और धर्म पर विचार करने के लिए भी कर्तव्याबद्ध है तथा प्रस्तावित संरक्षक के चरित्र और क्षमता और अवयस्क से निकटता पर भी विचार करेगा । अतः विधि यह व्यादेशित करती है कि किसी पुरुष बालक की अभिरक्षा पिता और उसके पैतृक नातेदारों को दी जानी चाहिए । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के सिद्धांतों की धारा 354(2) में उपबंधित निरर्हितता यह है कि माता सहित महिला जो अन्यथा बच्चे की अभिरक्षा के लिए हकदार है, तब अभिरक्षा का अधिकार खो देती है जब वह विवाह की विद्यमानता के दौरान रहने के लिए दूर चली जाती है । यह स्वीकृत है कि प्रत्यर्थी पिछले 7 वर्षों से अपीलार्थी से पृथक् रह रही है । अतः मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के साथ पठित संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के अनुसार प्रत्यर्थी अभिरक्षा के लिए अपात्र होने के अतिरिक्त संरक्षक नियुक्त किए जाने के लिए भी निरर्हित है । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी के पिता मोहम्मद रहमततुल्ला के पास पर्याप्त भू-संपत्ति है और उसके तीन पुत्र हैं और अपीलार्थी जो भारत सरकार में सहायक पासपोर्ट अधिकारी, प्रथम श्रेणी राजपत्रित अधिकारी है, सहित सभी अधिकारी हैं और उसका पुत्र अरमान कुटुंब में एकमात्र पुरुष बालक है । यह भी दलील दी गई है कि चूंकि विधि बच्चे के कल्याण के बारे में व्यादेशित करती है इसलिए न्यायालय यह अवधारित करने के लिए कर्तव्याबद्ध है कि किसकी संरक्षकता के अधीन अवयस्क बच्चे का भविष्य सुरक्षित रहेगा ।

8. पिता बच्चे का नैसर्गिक संरक्षक और अभिरक्षक है । संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 और मुल्ला कृत मुस्लिम विधि के अधीन 7 वर्ष की आयु पूरी कर लेने के पश्चात् पिता अवयस्क का नैसर्गिक संरक्षक होता है और उसे संरक्षक बनने के लिए अनुपयुक्त घोषित न करते हुए, उसे अवयस्क बालक की अभिरक्षा दी जानी चाहिए । अपीलार्थी ने यह भी दलील दी है कि उसकी वित्तीय स्थिति प्रत्यर्थी की अपेक्षा बेहतर है इसलिए

बच्चे की अभिरक्षा उसे दी जानी चाहिए । अपीलार्थी-पिता अवयस्क बच्चे के हित का संरक्षण करने के लिए अधिक उपयुक्त है और वह बच्चे के लिए अपेक्षित मानक शिक्षा प्रदान करने के लिए अधिक उपयुक्त है । चूंकि अपीलार्थी-पिता केन्द्र सरकार के अधीन एक अधिकारी है इसलिए उसके पास बच्चे की शिक्षा और कल्याण तथा देखभाल के लिए अधिक सुविधाएं हैं ।

9. इसके प्रतिकूल श्री चक्रपाणि, अधिवक्ता ने कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आदेश का समर्थन करते हुए यह दलील दी है कि कुटुंब न्यायालय ने दोनों पक्षकारों की स्थितियों पर गहराई से विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा माता से अपीलार्थी-पिता को नहीं दिलाई जा सकती ।

10. अपीलार्थी के काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है –

1. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सिंघाड़ा सिंह और अन्य**[1] ।

2. **मोहम्मद जमील अहमद अंसारी** बनाम **इशरत साजिदा और अन्य**[2] ।

प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेलों ने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है –

1. **रोजी जेकेब** बनाम **जेकेब ए. चक्रमक्कल**[3] ।

2. **रवीन्द्र सिंह** बनाम **फाइनेंशियल कमिश्नर, कोआपरेशन, पंजाब और अन्य**[4] ।

3. **नील रतन कुंडू और एक अन्य** बनाम **अभिजीत कुंडू**[5] ।

11. हमने दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना और निचले न्यायालय के अभिलेख तथा कुटुंब न्यायालय, पटना द्वारा पारित आदेश का परिशीलन किया ।

---

[1] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 358.
[2] ए. आई. आर. 1983 आंध्र प्रदेश 106.
[3] (1973) 1 एस. सी. सी. 840 = ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2090.
[4] (2008) 7 एस. सी. सी. 663.
[5] (2008) 9 एस. सी. सी. 413 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. (सप्ली.) 732.

12. यद्यपि पिता नैसर्गिक संरक्षक है, तथापि, स्वतः अभिरक्षा पाने के लिए हकदार नहीं होगा । अवयस्क का कल्याण प्राथमिक विचारण है और अवयस्कों की अभिरक्षा के लिए मात्र पक्षकारों के अधिकार के आधार पर विचार करके विनिश्चय नहीं किया जा सकता ।

13. हमने अपने कक्ष-सदन में लड़का और लड़की दोनों से पूछताछ की । लड़का और लड़की दोनों उनसे पूछे गए प्रश्नों को समझते हैं और इसके पश्चात् उन्होंने उत्तर दिए हैं । लड़का और लड़की के साक्षात्कार के समय उन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा कि वे सतत रूप से अपनी माता के साथ रहना चाहते हैं क्योंकि माता प्यार और स्नेह के साथ उनकी देखभाल कर रही है और वे अपने पिता के साथ नहीं जाना चाहते । बच्चों ने अपनी माता के साथ रहने के लिए ही अपनी इच्छा व्यक्त की है ।

14. न्यायालय के लिए महत्वपूर्ण बात बच्चों के कल्याण पर विचार करना है । बच्चों के कल्याण को केवल धन से नहीं मापा जा सकता । अवयस्क बच्चे कई वर्षों तक अपनी माता के साथ रहे हैं और माता ने उनकी ठीक प्रकार से देखभाल की है और इस दौरान अवयस्कों के पिता ने अवयस्कों में अपनी कोई दिलचस्पी उपदर्शित नहीं की थी । अभिरक्षा के विवाद्यक पर विचार करते समय इस परिस्थिति की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

15. बच्चे पिछले कई वर्षों से अपनी माता के साथ रह रहे हैं और इस स्तर पर उन्हें माता से पृथक् करना बच्चों की मानसिक स्थिति और बच्चों की शिक्षा को प्रभावित करेगा । यह अभिकथित किया गया है कि वर्ष 2010 में बच्चों के अलग होने के पश्चात् अपीलार्थी का बच्चों के साथ कोई भावनात्मक संबंध नहीं रहा है । पिता ने बच्चों को छोड़ने के पश्चात् कभी दिल्ली टेलीफोन पर बच्चों से बात नहीं की है अथवा उनके कल्याण के बारे में पूछताछ नहीं की है ।

16. तथापि, हम यह नहीं चाहते कि बच्चे अपने नैसर्गिक पिता के जिसे बढ़ते हुए बच्चों की सहायता करने का अधिकार है, प्रेम और स्नेह से वंचित रहें । बच्चों को अपने नैसर्गिक पिता से भी पर्याप्त सहायता और स्नेह मिलना चाहिए । प्रत्यर्थी को, अपीलार्थी-पिता को बच्चों को देखने आने के लिए नहीं रोकना चाहिए और प्रत्यर्थी को, अपीलार्थी के लिए उसके बच्चों के मिलने के लिए आवश्यक प्रबंध करना चाहिए । प्रत्यर्थी बच्चों को उनके पिता से कोई उपहार प्राप्त करने से नहीं रोकेगी । पिता

को बच्चों से मिलने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए और धीरे-धीरे बच्चों से पिता को नातेदारी विकसित करना चाहिए जिसकी इस समय पूर्णतया कमी है ।

17. हम इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि प्रारंभिक स्तर पर प्रत्यर्थी-माता कार्यरत नहीं थी और उसके पास स्वयं का और बच्चों का भरणपोषण करने के लिए आय का कोई स्वतंत्र स्रोत नहीं था । तथापि, बाद में वह अध्यापक के रूप में कार्य करने लगी और उसने शिक्षा स्नातक पाठ्यक्रम में प्रवेश भी ले लिया है । इस समय वह अच्छा वेतन प्राप्त कर रही है और बेहतर स्थिति में है । हम इस तथ्य के प्रति भी सचेत हैं कि बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के खर्चे अपीलार्थी-पिता द्वारा प्रत्यर्थी-माता को दिए गए भरणपोषण से पूरे होते हैं । तथापि, इस तथ्य को भी स्वीकार किया गया है कि अपीलार्थी-पिता उस स्थान पर कभी नहीं गया जहां बच्चे रहते हैं अथवा उसने अभिरक्षा-दावा फाइल करने से पूर्व अपने बच्चों से संपर्क नहीं किया । इस समय बच्चे अपने पिता से भावनात्मक रूप से जुड़े हुए नहीं हैं और इसलिए बच्चे उसके साथ जाने के लिए तैयार नहीं हैं । दोनों बच्चे प्रत्यर्थी-माता और उसके कुटुंब के साथ रह रहे हैं और पटना में विख्यात स्कूलों में अध्ययन कर रहे हैं । प्रत्यर्थी-माता अपने पुत्र और पुत्री की समुचित देखभाल करते हुए ध्यान दे रही है और यह एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जिस पर बच्चों के कल्याण के लिए विचार किया जाना चाहिए । पुत्र और पुत्री दोनों ही प्रत्यर्थी-माता के साथ रह रहे हैं जिसके कारण उनके बीच एक प्रबल भावनात्मक रिश्ता उत्पन्न हो गया है और स्थान के परिवर्तन से उनके अध्ययन और भविष्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

18. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गायत्री बजाज** बनाम **जीतन भल्ला**[1] वाले मामले में पैरा 14 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "14. उपर्युक्त से यह स्पष्ट होता है कि अवयस्क पुत्रों की अभिरक्षा के चाहे वह संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के उपबंधों के अध्यधीन हो अथवा हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 के उपबंधों के अधीन हो, संबंध में आदेश करते समय न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह अवयस्क के हित और कल्याण को महत्व देते हुए विचार करे । किसी भी माता-पिता के लिए यह सही नहीं है कि अभिरक्षा का हकदारी का विनिश्चय करते

---

[1] (2012) एस. सी. सी. 471 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 102.

हुए न्यायनिर्णयन की अपेक्षा करें । सही और समुचित पर्यावरण की उपलब्धता के साथ बच्चों के समुचित विकास के लिए बच्चों की इच्छा और माता-पिता की सक्षमता और साधन और बच्चों की देखभाल से संबंधित साधन ऐसे सुसंगत कारक हैं जिन पर न्यायालय द्वारा किसी अवयस्क की अभिरक्षा के विवाद्यक का विनिश्चय करते समय ध्यान दिया ज़ाना चाहिए । इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि जहां सभी अन्य कारक निस्संदेह सुसंगत हैं वहां बच्चों की इच्छा, हित और कल्याण ऐसे कारक हैं जो महत्वपूर्ण हैं और इस संबंध में अंतिम निष्कर्ष न्यायालय द्वारा किए जाने के लिए अपेक्षित अवधारण से मार्गदर्शित होने चाहिए ।"

19. हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले में कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं है । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला कुछ नहीं है कि बच्चों का कल्याण किसी भी प्रकार से माता के हाथों खतरे में पड़ जाएगा । बच्चों की स्थायित्वता और सुरक्षा बच्चों की प्रतिभा और व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के लिए एक आवश्यक संघटक है । प्रत्यर्थी एक सरकारी विद्यालय में अध्यापक है । बच्चे पटना में एक अच्छे विद्यालय में अध्ययन कर रहे हैं और इसलिए किसी भी प्रकार का परिवर्तन बच्चों की भावनात्मक स्थिति को प्रभावित कर सकता है ।

20. इन परिस्थितियों के अधीन और बच्चों के कल्याण के संबंध में प्राथमिक रूप से विचार को ध्यान में रखते हुए हम इस बात से सहमत हैं कि बच्चे जो माता की अभिरक्षा में हैं, यदि आगे भी माता की अभिरक्षा में रहते हैं तो बच्चों का हित और कल्याण बेहतर रूप से सुरक्षित रहेगा । हमारे मतानुसार बच्चों की अभिरक्षा में हस्तक्षेप करना वांछनीय नहीं है और इसलिए कुटुंब न्यायालय का आदेश जो पिता को मिलने के अधिकारों के साथ किया गया है, कायम रखे जाने योग्य है ।

21. परिणामतः अपील विफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

सुरभि त्रिवेदी (श्रीमती)

बनाम

पुष्कर त्रिवेदी

तारीख 11 सितंबर, 2017

न्यायमूर्ति एस. के. गंगेल और न्यायमूर्ति अशोक कुमार जोशी

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1) (iक) – विवाह-विच्छेद – क्रूरता – आधार – पत्नी द्वारा यह कथन करते हुए विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया जाना कि उसका पति उसे मारता-पीटता है और अप्राकृतिक मैथुन करता है – पति द्वारा समुचित तामील के बावजूद न्यायालय में उपस्थित न होना और कोई प्रतिवाद न किया जाना – पति का व्यवहार क्रूरतापूर्ण माना जाएगा – पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार है ।

अपीलार्थी ने यह अपील 2011 के सिविल वाद सं. 158क में प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जबलपुर (श्री आर. के. जोशी) द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2013 को पारित निर्णय के विरुद्ध फाइल की है । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1) के अधीन फाइल किए गए वाद को खारिज करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने से इनकार किया है । अपीलार्थी-वादी ने विचारण न्यायालय के समक्ष यह अभिवचन किया था कि उसका प्रत्यर्थी के साथ विवाह हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार तारीख 1 मार्च, 2008 को संपन्न हुआ था । अपीलार्थी ने यह अभिवचन किया कि प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने दहेज की मांग की । यह आरोप लगाया गया था कि अपीलार्थी के उसके ममरे भाई के साथ अवैध संबंध थे । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ अत्यधिक क्रूरता पूर्ण रीति में मैथुन किया था । उसने उसकी योनि में अपने अंगूठे का प्रवेश किया था और उसकी योनि में कतिपय कृत्रिम उपस्कर का भी प्रवेश किया था । उसे पीटा भी गया था । प्रत्यर्थी अप्राकृतिक मैथुन भी करता था भले ही वह मुख-मैथुन हो या गुदा-मैथुन । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क, 377/34 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन

दंडनीय अपराध करने के लिए पुलिस थाने में एक रिपोर्ट भी लिखाई थी । चूंकि अपीलार्थी का प्रत्यर्थी के साथ रहना संभव नहीं था इसलिए उसने विचारण न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए वाद फाइल किया था । विचारण न्यायालय ने रजिस्ट्रीकृत और साधारण डाक द्वारा प्रतिवादी-प्रत्यर्थी को सूचना जारी की थी । जब कोई उपस्थित नहीं हुआ तो दैनिक समाचारपत्र में सूचना प्रकाशित की गई थी । समुचित तामील के पश्चात् प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया । विचारण न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी खारिज की गई थी । अतः वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्चतम न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि लंबी अवधि तक लगातार पृथक्करण और किसी भी पक्षकार द्वारा एकतरफा होने का विनिश्चय करने के लिए प्रयास न करना या पर्याप्त समय तक मैथुन करने से इनकार करना और वह भी किसी शारीरिक अक्षमता के बिना या विधिमान्य कारण के बिना मानसिक क्रूरता के बराबर हो सकता है । विधि को लागू करने से इनकार करके विवाह बनावटी बन जाता है । वर्तमान में प्रत्यर्थी ने लंबे समय से अपीलार्थी से कोई संबंध नहीं रखा है । वह न तो विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और न ही सूचना की तामीली के बावजूद इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ । उसने न्यायालय को यह भी सूचित नहीं किया है कि क्या वह अब भी अपीलार्थी के साथ रहने का इच्छुक है या नहीं । न्यायालय के मतानुसार प्रत्यर्थी के उपर्युक्त आचरण को दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ क्रूरता बरत रहा है । विधि का यह सुस्थापित नियम है कि न्यायालय विवाह-विच्छेद के मामले में निर्णय और डिक्री पारित करने से पूर्व पक्षकार के पूर्व आचरण पर विचार कर सकता है । न्यायालय के मतानुसार मामले में पेश किए गए साक्ष्य और तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए यह उचित और ठीक होगा कि अपीलार्थी के हक में विवाह-विच्छेद की डिक्री अधिनिर्णीत की जाए । परिणामतः अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील एतद्द्वारा मंजूर की जाती है । विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं । अपीलार्थी के हक में विवाह-विच्छेद की डिक्री एतद्द्वारा मंजूर की जाती है । यह भी घोषित किया जाता है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच संपन्न विवाह अकृत हो गया है । (पैरा 8, 9 और 10)

अनुसरित निर्णय

पैरा

[2009]	(2009) 1 एस. सी. सी. 422 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 589 : **सुमन कपूर** बनाम **सुधीर कपूर** ;	7
[2007]	(2007) 4 एस. सी. सी. 511 : **समर घोष** बनाम **जया घोष** ।	6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की प्रथम अपील सं. 463.

2011 के सिविल वाद सं. 158क में प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जबलपुर (श्री आर. के. जोशी) द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2013 को पारित निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अतुल आनंद अवस्थी

प्रत्यर्थी की ओर से –

अपील में निर्णय न्यायमूर्ति एस. के. गंगेल और न्यायमूर्ति अशोक कुमार जोशी द्वारा पारित किया गया ।

निर्णय

अपीलार्थी ने यह अपील 2011 के सिविल वाद सं. 158क में प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जबलपुर (श्री आर. के. जोशी) द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2013 को पारित निर्णय के विरुद्ध फाइल की है । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1) के अधीन फाइल किए गए वाद को खारिज करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने से इनकार किया है ।

2. अपीलार्थी-वादी ने विचारण न्यायालय के समक्ष यह अभिवचन किया था कि उसका प्रत्यर्थी के साथ विवाह हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार तारीख 1 मार्च, 2008 को संपन्न हुआ था । अपीलार्थी ने यह अभिवचन किया कि प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने दहेज की मांग की । यह आरोप लगाए गए हैं कि अपीलार्थी के उसके ममरे भाई के साथ अवैध संबंध थे । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ अत्यधिक क्रूरता पूर्ण रीति में मैथुन किया था । उसने उसकी योनि में अपने अंगूठे का प्रवेश किया था और उसकी योनि में कतिपय कृत्रिम उपस्कर का भी प्रवेश किया था । उसे

पीटा भी गया था । प्रत्यर्थी अप्राकृतिक मैथुन भी करता था भले ही वह मुख-मैथुन हो या गुदा-मैथुन । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क, 377/34 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन दंडनीय अपराध करने के लिए पुलिस थाने में एक रिपोर्ट भी लिखाई थी । चूंकि अपीलार्थी का प्रत्यर्थी के साथ रहना संभव नहीं था इसलिए उसने विचारण न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए वाद फाइल किया था । विचारण न्यायालय ने रजिस्ट्रीकृत और साधारण डाक द्वारा प्रतिवादी-प्रत्यर्थी को सूचना जारी की थी । जब कोई उपस्थित नहीं हुआ तो दैनिक समाचारपत्र में सूचना प्रकाशित की गई थी । समुचित तामील के पश्चात् प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया ।

3. अपीलार्थी ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसका प्रत्यर्थी के साथ विवाह तारीख 1 मार्च, 2008 को इंदौर में हिन्दू रीतियों के अनुसार हुआ था । विवाह के पश्चात् प्रत्यर्थी के कुटुंब के सदस्यों ने लगभग 12 लाख रुपए दहेज की मांग की और जब दहेज का संदाय नहीं किया गया था तो अपीलार्थी ने उसके साथ क्रूरता बरतनी आरंभ कर दी । उससे दुर्व्यवहार किया गया और उसे पीटा गया । प्रत्यर्थी ने यह आरोप लगाया था कि अपीलार्थी के उसके ममेरे भाई के साथ अवैध संबंध थे । प्रत्यर्थी असामान्य मैथुन अर्थात् मुख-मैथुन और गुदा-मैथुन करता था ।

4. अपीलार्थी की माता ने भी शपथपत्र के द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसने यह अभिवचन किया है कि प्रत्यर्थी के कुटंब के सदस्यों द्वारा दहेज की मांग की गई थी और प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ प्रायः क्रूरता बरतता था । अपीलार्थी ने उसे यह बताया था कि प्रत्यर्थी असामान्य मैथुन करने का अभ्यस्त था । पुलिस थाने में एक रिपोर्ट लिखाई गई थी और एक दांडिक मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था ।

5. विचारण न्यायालय ने इस आधार पर अपीलार्थी का कथन खारिज कर दिया कि अपीलार्थी के अभिवचनों से कोई मामला नहीं बनता है । इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी को सूचना जारी की । एक प्रतिस्थापित तामील भी अनुज्ञात की गई थी और दैनिक समाचारपत्र 'दैनिक भास्कर' में जिसका इंदौर में वृहत परिचालन है, सूचना प्रकाशित की गई थी । प्रकाशन के बावजूद प्रत्यर्थी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ । अतः इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी के ऊपर समुचित तामील

हो गई है ।

6. उच्चतम न्यायालय ने **समर घोष** बनाम **जया घोष**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि मानसिक क्रूरता के संबंध में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i)(i-क) विवाह-विच्छेद का एक आधार है :–

"मार्गदर्शन के लिए कोई एक समान मानक अधिकथित नहीं किया जा सकता तथापि, हम यह उचित समझते हैं कि मानव व्यवहार के कुछ ऐसे उदाहरणों का उल्लेख किया जाए जो 'मानिसक क्रूरता' के मामलों पर विचार करने में सुसंगत हो सकते हैं । पूर्ववर्ती पैरों में दिए गए उदाहरण केवल दृष्टांत स्वरूप हैं न कि निःशेष ।

(i) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन पर विचार करने पर असहनीय मानसिक वेदना, व्यथा और क्रूरता जो पक्षकारों को एक दूसरे के साथ रहने के लिए असंभव बनाती है, मानसिक क्रूरता के मुख्य आयामों के अन्तर्गत आती है ।

(ii) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन का विस्तारपूर्वक मूल्यांकन करने पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार की स्थिति मौजूद है कि दोषी पक्षकार युक्तियुक्त रूप से ऐसा आचरण करने और दूसरे पक्षकार के साथ रहने के लिए नहीं कह सकता ।

(iii) मात्र उदासीनता या अनुरक्तिविहीनता, लगातार रूखी भाषा का प्रयोग, चिड़चिड़ापन, विचारों में मतभेद और उपेक्षा जो इस स्थिति तक पहुंचे कि यह दूसरे पक्ष के वैवाहिक जीवन को पूर्णतया असहनीय बना दे, क्रूरता के समान नहीं भी हो सकती है ।

(iv) मानसिक क्रूरता मानसिक स्थिति की विषयवस्तु है । तीव्र व्यथा का अनुभव, निराशा और एक पक्ष की कुंठा जो दूसरे पक्ष के आचरण द्वारा लंबे समय तक बनी रही हो, मानसिक क्रूरता को अग्रसर करती है ।

(v) दुर्व्यवहार और अमानवीयता का व्यवहार जो प्रताड़ना के बराबर हो, और जो पति या पत्नी के जीवन को कष्टदायक और कठिन बना दे ।

(vi) पति-पत्नी का निरन्तर अनौचित्यपूर्ण आचरण वस्तुतः दूसरे

---

[1] (2007) 4 एस. सी. सी. 511.

पक्ष के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है । शिकायत किया गया व्यवहार और परिणामस्वरूप खतरा या आशंका अत्यंत गंभीर, निरंतर और प्रभावपूर्ण होना चाहिए ।

(vii) निरंतर निदंनीय आचरण, निरंतर उपेक्षा, विभेदपूर्ण व्यवहार और दाम्पत्य सुख के सामान्य मानकों से पूर्ण विचलन, जो मानसिक स्वास्थ्य को आघात पहुंचाता हो और गलत व्यवहार करना मानसिक क्रूरता के बराबर हो सकता है ।

(viii) ऐसा आचरण जो ईर्ष्या, स्वार्थपरता, स्वत्वबोधकता से अधिक हो और जो अप्रसन्नता और असंतुष्टि तथा भावनात्मक परेशानी उत्पन्न करे, मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए आधार नहीं हो सकता ।

(ix) मात्र तुच्छ बातें, झगड़े, वैवाहिक जीवन का रोना-धोना जो दिन-प्रतिदिन के जीवन में होते हैं, मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद क मंजूरी के लिए पर्याप्त नहीं होंगे ।

(x) वैवाहिक जीवन का संपूर्णतः पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए और कुछ वर्षों की अवधि में मात्र कतिपय दृष्टांत क्रूरता की श्रेणी में नहीं आएंगे । दुराचरण काफी अवधि तक निरंतर होना चाहिए जहां नातेदारी इस हद तक बिगड़ जाए कि जिसके कारण पति या पत्नी में से किसी दोषी पक्षकार के कार्यों और व्यवहार से दूसरे पक्षकार को यह प्रतीत हो कि दूसरे पक्षकार के साथ लंबी अवधि तक रहना पूर्णतया कठिन है, मानसिक क्रूरता के समान होगा ।

(xi) यदि कोई पति चिकित्सीय कारणों के बिना स्वयं को अपनी पत्नी की सम्मति और जानकारी के बिना नसबंदी के लिए पेश करता है और समान रूप में यदि पत्नी चिकित्सीय कारण के बिना या अपने पति की सम्मति या जानकारी के बिना अपनी नसबंदी या गर्भपात कराती है तो पत्नी या पति का ऐसा कार्य मानसिक क्रूरता को अग्रसर करेगा ।

(xii) किसी शारीरिक अक्षमता या विधिमान्य कारण के बिना पर्याप्त अवधि तक मैथुन करने से इनकार करने का एकपक्षीय विनिश्चय मानसिक क्रूरता के समान हो सकता है ।

(xiii) विवाह के पश्चात् पति या पत्नी में से किसी के द्वारा

विवाह से बच्चा पैदा न करने का एकपक्षीय विनिश्चय क्रूरता के समान हो सकता है ।

(xiv) जहां लंबी अवधि तक सतत रूप से पृथक्ता हो, वहां समुचित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विवाह बंधन सुधार्य नहीं है । ऐसा विवाह एक बनावटी विवाह बन जाएगा, भले ही यह विधिक बंधन द्वारा समर्थित हो । ऐसे बंधन को तोड़ने से इनकार करना, विधि ऐसे मामलों में विवाह को मान्यता प्रदान नहीं करती ; इसके प्रतिकूल वह पक्षकारों की भावनाओं को सम्मान देना उपदर्शित करती है । ऐसी परिस्थितियों में यह मानसिक क्रूरता को अग्रसर करेगी ।

खंडन सिद्धांत के अधीन विवाह-विच्छेद को समाधान के रूप में देखा जाना चाहिए और यह कठिन स्थिति से बचना है । ऐसे विवाह-विच्छेद का अतीत के दोषों से संबंध नहीं होता है अपितु यह पक्षकारों के वर्तमान और कतिपय निबंधनों में बच्चों से और नवीन स्थिति से संबंधित होता है और ऐसे समाधानपूर्ण आधार से निकलकर स्थितियां विकसित होती हैं जिन पर वे परिवर्तित स्थितियों में अपनी नातेदारी को विनियमित कर सकते हैं । जब एक बार पक्षकार पृथक् हो जाते हैं और ऐसा पृथक्करण पर्याप्त समय तक सतत रूप से बना रहता है और उनमें से एक पक्ष विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी प्रस्तुत करता है तो यह भली प्रकार उपधारित किया जा सकता है कि विवाह विखंडित हो गया है । निस्संदेह न्यायालय को पक्षकारों के बीच सुलह के लिए गंभीर रूप से प्रयास करना चाहिए ; तथापि, यदि यह पाया जाता है कि विखंडन असुधार्य है तब विवाह-विच्छेद से इनकार नहीं किया जाना चाहिए । विधि में नाकामयाब विवाह के परिरक्षण के परिणाम जो लंबे समय तक प्रभावी रहते हों, निश्चित रूप से पक्षकारों के लिए गहरे दुख के स्रोत बनते हैं ।"

7. उच्चतम न्यायालय ने **सुमन कपूर** बनाम **सुधीर कपूर**[1] वाले मामले में मानसिक क्रूरता के संबंध में निम्न रूप में अभिनिर्धारित किया है :–

"30. क्रूरता की संकल्पना के बारे में हाल्सबरी कृत लॉज आफ इंग्लैंड की जिल्द 13, चौथे संस्करण के पैरा 1269 में इस प्रकार

[1] (2009) 1 एस. सी. सी. 422 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 589.

कहा गया है – क्रूरता के सभी मामलों में सामान्य नियम यह है कि सम्पूर्ण वैवाहिक संबंधों पर विचार किया जाना चाहिए और तब इस नियम का विशेष महत्व बन जाता है जब क्रूरता में हिंसक कार्य न किए गए हों अपितु हानिकारक कार्य, शिकायतें, आरोप और व्यंग किए गए हों । ऐसे मामलों में जहां कोई हिंसा नहीं की गई है, यह अवांछनीय है कि कार्यों या आचरण के कतिपय सृजित प्रवर्गों को ध्यान में रखकर न्यायिक निर्णयों पर विचार किया जाए जिसमें ऐसा आचरण हो या ऐसी प्रकृति या परिमाण न हो या आचरण जो उन्हें सभी परिस्थितियों में क्रूरता के समान बनाने योग्य या अयोग्य हो ; इसके लिए इसकी प्रकृति के बजाय आचरण का प्रभाव होता है जो क्रूरता की किसी शिकायत पर विचार करने में पर्याप्त महत्व रखता है । क्या पति-पत्नी में से कोई दूसरे पक्षकार के साथ क्रूरता का दोषी है, आवश्यक रूप से यह एक तथ्य का प्रश्न है और इस बारे में पूर्वतर विनिश्चित मामलों का महत्व, यदि कोई हो, बहुत कम है । न्यायालय को पक्षकारों की शारीरिक और मानसिक स्थिति तथा उनकी सामाजिक हैसियत को ध्यान में रखना चाहिए और पति-पत्नी में से किसी एक के व्यक्तित्व और आचरण का दूसरे पर क्या प्रभाव है इसको ध्यान में रखकर पति-पत्नी के बीच झगड़ों से संबंधित सभी घटनाओं का मूल्यांकन करना चाहिए और इसी दृष्टि से देखना चाहिए ; इसके अतिरिक्त अभिकथित आचरण की शिकायत करने वाले पक्षकार की सहनशीलता की क्षमता को दृष्टिगत करते हुए परीक्षा की जानी चाहिए और उस सहनशीलता की व्याप्ति को ध्यान में रखना चाहिए जिस क्षमता के बारे में दूसरे पक्षकार को जानकारी है ।

31. गोलिन्स **बनाम** गोलिन्स 1964 ए. सी. 644 = 1963 (2) आल. ई. आर. 966 वाले मामले में न्यायमूर्ति रेड ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है –

> 'कोई भी व्यक्ति क्रूरता की वृहत परिभाषा देने का प्रयास नहीं करता, इसलिए मैं भी ऐसा करने का प्रयास नहीं करूंगा । यह बात अधिकतर प्रत्यर्थी की जानकारी और आशय तथा उसके आचरण की प्रकृति और चरित्र तथा पति या पत्नी की शारीरिक या मानसिक कमजोरी पर अवधारित होनी चाहिए और

संभवतः सभी मामलों में कोई सामान्य कथन समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता है सिवाय उन मामलों के जहां यह अपेक्षित है कि अनुतोष मांगने वाले पक्षकार को अपने जीवन या अवयव या स्वास्थ्य को वास्तविक या संभावित खतरा उपदर्शित करना चाहिए ।'

32. न्यायमूर्ति पियर्स ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है –

'क्रूरता की व्यापक परिभाषा देना असंभव है । तथापि, जहां दाम्पत्य संबंधों के सामान्य मानकों से असहनीय आचरण या विचलन द्वारा स्वास्थ्य को हानि पहुंचती हो या खतरे की आशंका हो, वहां मेरा यह मत है कि क्रूरता यदि कोई युक्तियुक्त व्यक्ति सभी विशिष्ट परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् यह समझता है कि शिकायत किया गया आचरण इस प्रकार का है कि दंपत्ति को साथ रहने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए । [(रूसैल **बनाम** रूसैल (1897 ए. सी. 395 = 1895-99) आल. ईं. आर. रेप 1 वाला मामला देखिए]'

33. इस न्यायालय ने एन. जी. दस्ताने **बनाम** एस. दस्ताने ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1534 = (1975) 2 एस. सी. सी. 326 वाले मामले में क्रूरता की परीक्षा करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया है –

'अतः यह जांच की जानी चाहिए कि क्या क्रूरता के रूप में आरोपित आचरण ऐसी प्रकृति का है जिससे कि अर्जीदार के मस्तिष्क में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो कि उसका प्रत्यर्थी के साथ रहना नुकसानदेह होगा या प्रत्यर्थी के जीवन के लिए घातक होगा ....।'

34. इस न्यायालय ने सिराज मोहम्मद खां जान मोहम्मद खां **बनाम** हैजुन्निसा यासीन खां और एक अन्य ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 1972 = (1981) 4 एस. सी. सी. 250 वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि विधिक क्रूरता की संकल्पना परिवर्तनों और सामाजिक संकल्पना की आधुनिकता और जीवन यापन के मानकों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है । न्यायालय द्वारा यह भी कहा गया था कि विधिक क्रूरता को साबित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि शारीरिक हिंसा का प्रयोग किया जाए । पति की ओर से वैवाहिक

दायित्वों के संबंध में सतत रूप से वैवाहिक मैथुन से विरत रहना या पूर्णतया विभेद करना विधिक क्रूरता को अग्रसर करेगा ।

35. इस न्यायालय ने शोभा रानी **बनाम** मधुकर रेड्डी ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 121 = (1981) 1 एस. सी. सी. 105 वाले मामले में क्रूरता की संकल्पना की परीक्षा की थी । यह मत व्यक्त किया गया था कि 'क्रूरता' पद को हिन्दू विवाह अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है । इसे अधिनियम की धारा 13(1) (i-क) में मानव आचरण और नातेदारी में व्यवहार के लिए या वैवाहिक कर्तव्यों या दायित्वों के संदर्भ में मानव आचरण के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है । यह पति-पत्नी में से किसी के आचरण की ऐसी स्थिति है जो दूसरे को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है । क्रूरता मानसिक या शारीरिक, साशय या आशय के बिना हो सकती है । यदि यह शारीरिक है तो उसकी गंभीरता पर जो सुसंगत है, विचार किया जाएगा । यदि यह मानसिक है तो क्रूरतापूर्ण व्यवहार की प्रकृति के बारे में जांच की जानी चाहिए और तत्पश्चात् पति-पत्नी में से दूसरे पक्ष के मस्तिष्क पर ऐसे व्यवहार के प्रभाव के बारे में जांच की जानी चाहिए कि क्या इससे ऐसी युक्तियुक्त आशंका है कि पति-पत्नी में से किसी का दूसरे के साथ रहने के लिए नुकसानदेह या हानिकारक होगा और अंततः यह ऐसा निष्कर्ष निकालने का विषय है जो आचरण की प्रकृति के आधार पर निकाला जाएगा और इसकी शिकायत करने वाले पति या पत्नी पर इसके प्रभाव के संबंध में निष्कर्ष निकाला जाएगा ।

36. तथापि, ऐसे मामले हो सकते हैं जहां स्वतः शिकायत करने वाले पक्ष का आचरण सही न हो और दूसरे के प्रति अवैध या अविधिमान्य हो । इसके पश्चात् पति-पत्नी में से दूसरे पक्ष पर इसके प्रभाव और हानि के संबंध में जांच करने या विचार किए जाने की आवश्यकता है । ऐसे मामलों में क्रूरता तभी साबित होगी जब स्वतः आचरण साबित होता हो या स्वीकार किया गया हो । आशय के अभाव से मामले में कोई अंतर नहीं पड़ना चाहिए, यदि सामान्य अर्थों में मानव क्रियाकलाप अर्थात् शिकायत किया गया कार्य अन्यथा क्रूरता के रूप में समझा जाए । दुराशय क्रूरता में एक आवश्यक तत्व नहीं है । पक्षकार को अनुतोष प्रदान करने से इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता कि जानबूझकर या स्वैच्छिक रूप से बुरा

व्यवहार नहीं किया गया है ।

37. वी. भगत **बनाम** (श्रीमती) डी. भगत ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710 = (1994) 1 एस. सी. सी. 337 वाले मामले में न्यायालय द्वारा इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है –

> 'धारा 13(1) (i-क) में मानसिक क्रूरता को मौटे तौर पर ऐसे आचरण के रूप में परिभाषित किया गया है जो दूसरे पक्षकार को ऐसी मानसिक पीड़ा या क्षति पहुंचाता हो जिससे कि उस पक्षकार को दूसरे पक्षकार के साथ रहना संभव न हो । दूसरे शब्दों में, मानसिक क्रूरता ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए जो पक्षकारों को एक दूसरे के साथ रहने के लिए युक्तियुक्त रूप से प्रत्याशित न करे । स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि दोषी पक्षकार ऐसे आशय के बिना युक्तियुक्त रूप से साथ रहने के लिए नहीं कह सकता । यदि यह शरीरिक है तो तथ्य के प्रश्न और गंभीरता पर विचार किया जाना चाहिए । यदि यह मानसिक है तो इस बारे में जांच होनी चाहिए कि क्रूरतापूर्ण व्यवहार किस प्रकृति का है और तत्पश्चात् पति या पत्नी के मस्तिष्क पर ऐसे व्यवहार के प्रभाव की जांच की जानी चाहिए । क्या इससे यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हुई है कि एक दूसरे के साथ रहना नुकसानदेह या हानिकारक होगा और अंततः यह आचरण की प्रकृति और शिकायत करने वाले पति या पत्नी पर प्रभाव के बारे में निष्कर्ष निकाले जाने का विषय है । तथापि, ऐसे मामले हो सकते हैं जहां स्वतः शिकायत करने वाले का आचरण बहुत बुरा हो और दूसरे के प्रति अवैध या अविधिमान्य हो । इसके पश्चात् पति या पत्नी में से दूसरे पर इसके प्रभाव और हानि के संबंध में जांच या विचार किया जाना चाहिए । ऐसे मामलों में क्रूरता तभी साबित होगी जब स्वतः आचरण साबित होता हो या स्वीकार किया गया हो । आशय के अभाव से मामले में कोई अन्तर नहीं पड़ना चाहिए यदि सामान्य अर्थों में मानव क्रियाकलाप अर्थात् शिकायत किया गया कार्य क्रूरता के रूप में समझा जाए । आशय क्रूरता में आवश्यक तत्व नहीं है । पक्षकार को अनुतोष देने से इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता कि जानबूझकर या स्वैच्छिक बुरा बरताव या आचरण नहीं किया गया है और दूसरा पक्षकार सतत रूप से साथ रह

रहा है । यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि मानसिक क्रूरता इस प्रकार की है जिससे अर्जीदार के स्वास्थ्य को क्षति कारित होती है । ऐसा निष्कर्ष निकालने के समय पक्षकारों की सामाजिक स्थिति और शैक्षिक स्तर को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिस समाज में वे रहते हैं और पक्षकारों के ऐसे मामले में साथ रहने की संभावना या अन्यथा वे पहले से साथ रह रहे हैं और अन्य सभी सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों का जो न तो संभव हैं न ही वांछनीय, निःशेष रूप से उल्लेख होना चाहिए । जो चीज एक मामले में क्रूरता है वह दूसरे मामले में क्रूरता नहीं भी हो सकती है । यह एक ऐसा विषय है जिसे प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अवधारित किया जाना चाहिए । यदि यह आरोपों और अभिकथनों का एक मामला है तो उस संदर्भ पर विचार किया जाना चाहिए जिसमें ऐसे अभिकथन किए गए हैं ।'

38. इस न्यायालय ने चेतन दास **बनाम** कमला देवी ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1709 = (2001) 4 एस. सी. सी. 250 वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है –

'वैवाहिक मामले मानव संवेदनशील और भावनात्मक नातेदारी के मामले होते हैं । इसमें आपसी विश्वास, सम्मान, मान, प्रेम और पति या पत्नी के साथ युक्तियुक्त समायोजन के लिए एक दूसरे की आवश्यकता होती है । नातेदारी सामाजिक सन्नियमों की पुष्टि करती है । वैवाहिक आचरण ऐसे सन्नियमों और सामजिक परिवर्तन को देखते हुए विरचित कानून द्वारा विनयमित होने चाहिए । इस बात की आवश्यकता है कि यह व्यक्तियों के हित में तथा व्यापक भविष्यलक्षी हित में नियंत्रित होने चाहिए जिससे कि वैवाहिक सन्नियमों को एक डोर में बांधकर विनियमित किया जाए और यह सभ्य समाज में हो सकता है न कि असभ्य समाज में और न कि विक्षिप्त असभ्य समाज में । विवाह का आरंभ एक महत्वपूर्ण स्थान देता है और सामान्यतया समाज में भूमिका निभाता है । अतः विवाह-विच्छेद के अनुतोष की मंजूरी के लिए 'असयंत रूप से खण्डित विवाह' के किसी प्रेक्षण को सख्ती के साथ में लागू करना उचित नहीं होगा । इस पहलू पर मामले के अन्य तथ्यों और परिस्थितियों

की पृष्ठभूमि में विचार किया जाना चाहिए ।'

39. इस न्यायालय द्वारा परवीन मेहता **बनाम** इन्द्रजीत मेहता ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2582 = (2002) 5 एस. सी. सी. 706 वाले मामले में भी मानसिक क्रूरता की परीक्षा की गई थी जो इस प्रकार है –

> 'धारा 13(1) (i-क) के प्रयोजन के लिए क्रूरता को पति या पत्नी में से एक के द्वारा दूसरे के प्रति ऐसे व्यवहार के रूप में लिया गया है जो दूसरे के मस्तिष्क में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करे कि उसके लिए दूसरे पक्ष के साथ वैवाहिक नातेदारी जारी रखना सुरक्षित नहीं है । मानसिक क्रूरता ऐसी मानसिक स्थिति और भावना है जो पति या पत्नी में से किसी एक द्वारा दूसरे के साथ व्यवहार करने और किस तरीके से व्यवहार करने से संबंधित है । शारीरिक क्रूरता के मामले के सदृश मानसिक क्रूरता प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित करना कठिन है । यह आवश्यक रूप से मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से निष्कर्ष निकाले जाने का विषय है । पति या पत्नी में एक के द्वारा दूसरे के प्रति आचरण द्वारा वेदना, निराशा और कुंठा की भावना आने के संबंध में केवल उन तथ्यों और परिस्थितियों का मूल्यांकन किया जा सकता है जिन परिस्थितियों में वैवाहिक जीवन के दोनों साथी रह रहे हैं । निष्कर्ष संबद्ध तथ्यों और परिस्थितियों से संचयी रूप से निकाला जाना चाहिए । मानसिक क्रूरता के मामले में यह सही नहीं होगा कि एकमात्र दुर्व्यवहारपूर्ण दृष्टांत को विचार में लिया जाए और तत्पश्चात् यह प्रश्न उठाया जाए कि क्या ऐसा व्यवहार अपने आप में मानसिक क्रूरता कारित किए जाने के लिए पर्याप्त है । निष्कर्ष ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के संचयी प्रभाव से निकाला जाना चाहिए जो अभिलेख पर के साक्ष्य से सृजित होती हों और तत्पश्चात् ऐसा ऋजु निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि क्या विवाह-विच्छेद की ईप्सा करने वाले अर्जीदार के साथ दूसरे के आचरण से मानसिक क्रूरता हुई है ।'

40. न्यायालय ने ए. जयचन्द्र **बनाम** अनील कौर ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 534 = (2005) 2 एस. सी. सी. 22 वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है –

'10. क्रूरता पद को अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है । क्रूरता शारीरिक या मानसिक हो सकती है । क्रूरता को जो विवाह के विघटन के लिए एक आधार है, ऐसी प्रकृति के स्वैच्छिक और अनौचित्यपूर्ण आचरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिससे कि जीवन, अवयव या स्वास्थ्य को शारीरिक या मानसिक खतरा उत्पन्न हो या जो जीवन के लिए युक्तियुक्त रूप से खतरे की आशंका उत्पन्न करे । मानसिक क्रूरता के प्रश्न पर उस विशिष्ट समाज में प्रचलित सन्नियमों को दृष्टिगत करते हुए विचार किया जाना चाहिए जिसमें कि पक्षकार रहते हों और उनकी सामाजिक मान्यताओं, हैसियत और पर्यावरण पर जिसमें वे रहते हों, विचार किया जाना चाहिए । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि क्रूरता में ऐसी मानसिक क्रूरता सम्मिलित है जो वैवाहिक दोष की परिधि के भीतर आती हो । यह आवश्यक नहीं है कि क्रूरता शारीरिक हो । यदि पति या पत्नी में से किसी के आचरण से यह साबित हो जाता है और/या विधिक रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पति या पत्नी का व्यवहार इस प्रकार का है जिससे दूसरे पक्ष के मस्तिष्क में यह आशंका उत्पन्न हो कि उसकी मानसिक स्थिति को खतरा है तो ऐसा आचरण क्रूरता के समान होगा । विवाह के सदृश उत्कृष्ट मानव नातेदारी को कोई भी व्यक्ति मामले की संभावनाओं से सुनिश्चित कर सकता है । संदेह के परे संकल्पना का सबूत दांडिक विचारण में लागू किया जाएगा न कि सिविल मामलों में और निश्चित रूप से न कि ऐसे उत्कृष्ट नातेदारी के मामलों में जो कि पति और पत्नी के बीच हों । अतः कोई भी यह सुनिश्चित कर सकता है कि किसी मामले में क्या संभावनाएं हैं और विधिक क्रूरता का पता लगाया जाएगा न कि मात्र तथ्य के रूप में, अपितु शिकायत करने वाले पति या पत्नी के मस्तिष्क पर इसके प्रभाव पर विचार करते हुए जो कि दूसरे के कार्यों और कमियों से पड़ते हैं । क्रूरता शारीरिक या दैहिक या मानसिक हो सकती है । शारीरिक क्रूरता के मामले में अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष साक्ष्य हो सकता है तथापि, मानसिक क्रूरता के मामले में ऐसा कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं भी हो सकता है । ऐसे मामलों में जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है, न्यायालयों से यह अपेक्षित है कि वे उन घटनाओं से मानसिक प्रभाव की जांच करें जो साक्ष्य में आई हैं । इसे

दृष्टिगत करते हुए कोई भी व्यक्ति वैवाहिक विवादों के साक्ष्य पर विचार कर सकता है ।'

41. न्यायालय ने विनीता सक्सेना **बनाम** पंकज पंडित ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1662 = (2006) 3 एस. सी. सी. 778 वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है –

'31. विभिन्न विनिश्चयों द्वारा यह सुस्थापित है कि मानसिक क्रूरता शारीरिक क्षति की तुलना में अधिक गंभीर हो सकती है और आहत अपीलार्थी के मस्तिष्क में ऐसी आशंका उत्पन्न कर सकती है जो धारा में अनुध्यात है । इसका अवधारण मामले के संपूर्ण तथ्यों और पति-पत्नी के बीच वैवाहिक संबंधों के आधार पर किया जाना चाहिए । क्रूरता साबित करने के लिए किसी पक्षकार का ऐसा स्वैच्छिक व्यवहार साबित होना चाहिए जो शरीर या मस्तिष्क को आघात पहुंचाए चाहे वह वास्तविक तथ्य के द्वारा हो या आशंका द्वारा या ऐसी रीति में जिससे कि पति या पत्नी को लगातार साथ रहने के लिए नुकसानदेह या हानिकारक हो और इसमें मामले की परिस्थितियों को विचार में लिया जाना चाहिए ।

32. 'क्रूरता' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है और इसे मानव आचरण या मानव व्यवहार के रूप में प्रयुक्त किया गया है । यह ऐसा आचरण है जो वैवाहिक कर्तव्यों और दायित्वों से संबंधित है । यह इस प्रकार का आचरण है जो दूसरे को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है । क्रूरता मानसिक, साशय या आशय के बिना हो सकती है । ऐसे मामले हो सकते हैं जहां स्वतः शिकायत करने वाले का आचरण पूर्ण रूप से निन्दनीय हो और दूसरे के प्रति अवैधानिक या अवैध हो । ऐसे मामले में दूसरे पक्ष पर प्रभाव या हानि की बाबत जांच करने या विचार करने की आवश्यकता नहीं है । ऐसे मामलों में क्रूरता साबित मानी जाएगी यदि स्वत: आचरण साबित होता है या स्वीकार किया जाता है ।'

42. न्यायालय द्वारा आगे इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है –

'प्रत्येक मामला स्वयं अपने तथ्यों पर अवधारित होता है और उसकी जांच स्वयं उसके तथ्यों के आधार पर की जानी

चाहिए । क्रूरता की संकल्पना समय-समय पर और स्थान-स्थान पर परिवर्तित होती रहती है और अलग-अलग व्यक्तियों पर इसका प्रवर्तन अन्तर्वलित व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति के अनुसार किया जाना चाहिए और उनकी आर्थिक स्थितियों और अन्य विषयों को विचार में लिया जाना चाहिए । यह प्रश्न कि क्या शिकायत किया गया कार्य क्रूरतापूर्ण कार्य था, सम्पूर्ण तथ्यों के आधार पर और पक्षकारों के बीच वैवाहिक नातेदारी के आधार पर अवधारित किया जाना चाहिए । इस संबंध में संस्कृति, स्वभाव और जीवन में हैसियत और अन्य बातें ऐसे कारक हैं, जिन पर विचार किया जाना चाहिए ।

36. क्रूरता की विधिक संकल्पना को जिसे कानून द्वारा परिभाषित नहीं किया गया है, सामान्यतया ऐसी प्रकृति के आचरण के रूप में वर्णित किया गया है जिससे जीवन, अवयव या स्वास्थ्य (शारीरिक या मानसिक) को खतरा उत्पन्न हो या ऐसे खतरे की युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो । क्रूरता के सभी प्रश्नों में सामान्य नियम यह है कि सम्पूर्ण वैवाहिक नातेदारी पर विचार किया जाना चाहिए और इस नियम का तब विशेष महत्व बन जाता है जब क्रूरता में हिंसक कार्य न किया गया हो, अपितु हानिकारक कार्य, शिकायतें, आरोप या व्यंग्य किए गए हों । यह मानसिक हो सकती है जैसे पत्नी के साथ विभेद और रूखापन, उसके साथ रहने से इनकार, पत्नी का दिल दुखाना और उससे घृणा करना अथवा शारीरिक हिंसात्मक कार्य और युक्तियुक्त कारण के बिना मैथुन से विरत रहना । यह साबित किया जाना चाहिए कि विवाह का एक पक्षकार भले ही वह परिणामों से अवगत न हो, इस रीति में व्यवहार करता है जिससे दूसरा पक्ष ऐसी स्थितियों में हो कि उसे सह न सके और ऐसा दुराचरण जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो या ऐसी क्षति पहुंचने की युक्तियुक्त आशंका हो । ऐसी क्षति की आशंका के मामले में दोनों पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए । क्रूरता के मामले में दोनों पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए । क्या अपीलार्थी की ओर से आचरण सहने की बात कही जा सकती है ? क्या प्रत्यर्थी की ओर से यह आचरण क्षम्य था ? तत्पश्चात् न्यायालय को यह विनिश्चित करना चाहिए कि क्या ऐसा सम्पूर्ण निंदनीय आचरण क्रूरतापूर्ण था । यह बात इस पर

> निर्भर करती है कि क्या संचयी आचरण गंभीरता से यह कहने के लिए पर्याप्त था कि किसी युक्तियुक्त व्यक्ति की दृष्टि से ऐसा कोई बहाना विचार किए जाने योग्य था जैसी कि प्रत्यर्थी ने परिस्थितियां बताई हैं और क्या आचरण इस प्रकार का है जिसे याची को सहने के लिए नहीं कहा जा सकता ।'

8. उच्चतम न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि लंबी अवधि तक लगातार पृथक्करण और किसी भी पक्षकार द्वारा एकतरफ होने का विनिश्चय करने के लिए प्रयास न करना या पर्याप्त समय तक मैथुन करने से इनकार करना और वह भी किसी शारीरिक अक्षमता के बिना या विधिमान्य कारण के बिना, मानसिक क्रूरता के बराबर हो सकता है । विधि को लागू करने से इनकार करके विवाह बनावटी बन जाता है । वर्तमान में प्रत्यर्थी ने लंबे समय से अपीलार्थी से कोई संबंध नहीं रखा है । वह न तो विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और न ही सूचना की तामीली के बावजूद इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ । उसने न्यायालय को यह भी सूचित नहीं किया है कि क्या वह अब भी अपीलार्थी के साथ रहने का इच्छुक है या नहीं ।

9. हमारे मतानुसार प्रत्यर्थी के उपर्युक्त आचरण को दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ क्रूरता बरत रहा है । विधि का यह सुस्थापित नियम है कि न्यायालय विवाह-विच्छेद के मामले में निर्णय और डिक्री पारित करने से पूर्व पक्षकार के पूर्व आचरण पर विचार कर सकता है ।

10. हमारे मतानुसार मामले में पेश किए गए साक्ष्य और तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए यह उचित और ठीक होगा कि अपीलार्थी के हक में विवाह-विच्छेद की डिक्री अधिनिर्णीत की जाए । परिणामतः अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील एतद्द्वारा मंजूर की जाती है । विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं । अपीलार्थी के हक में विवाह-विच्छेद की डिक्री एतद्द्वारा मंजूर की जाती है । यह भी घोषित किया जाता है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच संपन्न विवाह अकृत हो गया है ।

11. पक्षकार अपना-अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

बलीराम

बनाम

श्रीमती सुमित्रा

तारीख 18 जुलाई, 2018

न्यायमूर्ति एस. के. गंगेले और न्यायमूर्ति अखिल कुमार श्रीवास्तव

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(iक) [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 494] – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा क्रूरता – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध जारकर्म के झूठे अभिकथन लगाए जाने के आपराधिक परिवाद पर सिविल न्यायालय के निर्णय और पति के विभाग में झूठे अभिकथनों पर विभागीय जांच की कार्यवाही पूरी होने पर पति को आरोपों से दोषमुक्त पाए जाने के आधार पर, पति क्रूरता के कारण विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है ।

अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह हिंदू रीति-रिवाज के अनुसार दमोह में 20 जून, 1991 को संपन्न हुआ था । अपीलार्थी ने यह अभिवचन किया कि विवाह से ही प्रत्यर्थी उसके साथ क्रूर बतार्व कर रही है । पिछले 13 वर्षों से प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ नहीं रह रही है । उसने यह आरोप लगाया कि अपीलार्थी ने दूसरा विवाह कर लिया है और वह उस महिला के साथ रह रहा है । प्रत्यर्थी द्वारा कृषि विभाग में इस बाबत शिकायत दर्ज कराई गई है । अपीलार्थी को तारीख 3 मार्च, 2001 के आदेश द्वारा निलंबित किया गया । विभागीय जांच आरंभ की गई और जांच में अपीलार्थी के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा लगाए गए अभिकथन आधारहीन पाए गए, इसके पश्चात् उसके निलंबन को तारीख 11 सितंबर, 2002 के आदेश द्वारा अभिखंडित किया गया । प्रत्यर्थी ने उस अवधि के लिए अपीलार्थी के साथ दुर्व्यवहार किया और उसने पुलिस थाने में शिकायत दर्ज की । अपीलार्थी ने अपने रहने के लिए प्रत्यर्थी को मनाने का पूरा प्रयास किया फिर भी वह असफल रहा । प्रत्यर्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम

वर्ग के समक्ष अपीलार्थी और उसके कुटुम्ब के सदस्यों के विरुद्ध झूठी प्राइवेट शिकायत फाइल की । क्रूरता और अधित्यजन के आधार पर अपीलार्थी ने विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा की । आक्षेपित निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय ने विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन फाइल किए गए अपीलार्थी के वाद को खारिज कर दिया । अपीलार्थी ने 2006 के सिविल वाद सं. 21-ए में पारित तारीख 6 जनवरी, 2007 के निर्णय के विरुद्ध यह अपील फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – मामले का स्वीकृत तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विरुद्ध अभिकथन किए कि वह एक अन्य स्त्री कल्पना उपाध्याय के साथ रह रहा है । शिकायत जारकर्म का अभिकथन करते हुए अपीलार्थी के विरुद्ध कृषि विभाग में प्रत्यर्थी द्वारा दर्ज कराई गई थी कि वह कल्पना नाम की महिला के साथ रह रहा है और उसने दूसरा विवाह कर लिया है । अपीलार्थी को निलंबित किया गया और उसके विरुद्ध विभागीय जांच संस्थित की गई । आदेश तारीख 27 दिसंबर, 2004 के द्वारा नियमित विभागीय जांच करने के पश्चात् उसे आरोपों से मुक्त किया गया और उसका निलंबन रद्द किया गया । प्रत्यर्थी ने यह अभिकथित करते हुए एक प्राइवेट शिकायत भी फाइल की कि अपीलार्थी जारकर्म में रह रहा है और दूसरा विवाह कर लिया है । भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन अपीलार्थी और श्रीमती कल्पना उपाध्याय के विरुद्ध अपराध दर्ज किया गया । विचारण न्यायालय ने तारीख 10 अक्तूबर, 2007 के आदेश द्वारा अपीलार्थी और कल्पना उपाध्याय को भारतीय दंड संहिता की धारा 494/34 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी के अभिवचन के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित किए कि वह कल्पना उपाध्याय के साथ रह रहा है और उसने उसके साथ विवाह कर लिया है तथा उनके विवाह बंधन से दो बच्चे पैदा हुए, सही नहीं है । प्रत्यर्थी ने बार-बार वही अभिकथन किए । विचारण न्यायालय के निर्णय के पश्चात्, प्रत्यर्थी द्वारा वर्ष 2002 में वही अभिकथन लगाकर अपीलार्थी के कृषि विभाग में शिकायत की गई

थी । अपीलार्थी को निलंबित किया गया और उसकी विभागीय जांच की गई । तत्पश्चात् उसे आरोप से मुक्त किया गया और उसके निलंबन को रद्द किया । फिर भी प्रत्यर्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन अपीलार्थी और कल्पना उपाध्याय के विरुद्ध प्राइवेट शिकायत दर्ज की । विचारण न्यायालय ने उपरोक्त आरोप से अपीलार्थी को उन्मुक्त किया । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विरुद्ध बारबार जारकर्म के अभिकथन किए, यद्यपि आपराधिक कार्यवाही में सिविल न्यायालय द्वारा और विभागीय जांच में अभिकथन सही नहीं पाए गए । अतः, न्यायालय की राय में अपीलार्थी क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है । अगला प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान वाद पूर्व निर्णय को ध्यान में रखते हुए, संधार्य है । पूर्वतर निर्णय वर्ष 2002 में पारित किया गया था और निर्णय के पश्चात् प्रत्यर्थी ने उसके विभाग में अपीलार्थी के विरुद्ध परिवाद फाइल किया था । उसे निलंबित किया गया और उसकी विभागीय जांच की गई । उसने अपीलार्थी के विरुद्ध आपराधिक मामला भी फाइल किया । अपीलार्थी आरोपों से दोषसिद्ध हुआ, अतः, न्यायालय की राय में पश्चात्वर्ती तथ्यों के आधार पर वर्तमान वाद संधार्य है । अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है । (पैरा 9, 10, 12, 14 और 15)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 9 एस. सी. सी. 455 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 4599 : **नरेन्द्र** बनाम **के. मीना** ।	13

अपीली (सिविल)अधिकारिता : 2007 की प्रथम अपील सं. 102.

2006 के सिविल वाद सं. 21 में विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 6 जनवरी, 2007 के निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री महेन्द्र पटेरिया, विद्वान् न्यायमित्र

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. के. गंगेले ने दिया ।

न्या. गंगेले – अपीलार्थी ने 2006 के सिविल वाद सं. 21-ए में पारित तारीख 6 जनवरी, 2007 के निर्णय के विरुद्ध यह अपील फाइल की । आक्षेपित निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय ने विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन फाइल किए गए अपीलार्थी के वाद को खारिज कर दिया ।

2. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह हिंदू रीति-रिवाज के अनुसार दमोह में 20 जून, 1991 को संपन्न हुआ था । अपीलार्थी ने यह अभिवचन किया कि विवाह से ही प्रत्यर्थी उसके साथ क्रूर बर्ताव कर रही है । पिछले 13 वर्षों से प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ नहीं रह रही है । उसने यह आरोप लगाया कि अपीलार्थी ने दूसरा विवाह कर लिया है और वह उस महिला के साथ रह रहा है । प्रत्यर्थी द्वारा कृषि विभाग में इस बाबत शिकायत दर्ज कराई गई है । अपीलार्थी को तारीख 3 मार्च, 2001 के आदेश द्वारा निलंबित किया गया । विभागीय जांच आरंभ की गई और जांच में अपीलार्थी के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा लगाए गए अभिकथन आधारहीन पाए गए, इसके पश्चात् उसके निलंबन को तारीख 11 सितंबर, 2002 के आदेश द्वारा अभिखंडित किया गया । प्रत्यर्थी ने उस अवधि के लिए अपीलार्थी के साथ दुर्व्यवहार किया और उसने पुलिस थाने में शिकायत दर्ज की ।

3. अपीलार्थी ने अपने रहने के लिए प्रत्यर्थी को मनाने का पूरा प्रयास किया फिर भी वह असफल रहा । प्रत्यर्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग के समक्ष अपीलार्थी और उसके कुटुम्ब के सदस्यों के विरुद्ध झूठी प्राइवेट शिकायत फाइल की । क्रूरता और अधित्यजन के आधार पर अपीलार्थी ने विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा की है ।

4. प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के अभिवचनों का खंडन किया । उसने अपने लिखित कथन में यह स्वीकार किया कि उसने अपीलार्थी के विरुद्ध उसके विभाग में दूसरे विवाह के संबंध में शिकायत की थी । उसने अभिवचन किया कि वह अपीलार्थी के साथ वर्ष 1993 तक रही और 12

मार्च, 1993 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के विवाह बंधन से उसका पुत्र शनि पैदा हुआ । शाहपुर ग्राम में, अपीलार्थी कल्पना उपाध्याय नामक महिला के मकान में रहता था । उसके पति की मृत्यु हो गई थी और उसने उस महिला से संबंध बनाए । तब से अपीलार्थी पूर्वोक्त महिला के साथ रह रहा था । अपीलार्थी और कल्पना उपाध्याय के विवाह बंधन से डा. पी. के. जैन के आर्शीवाद क्लिनिक में 8 अगस्त, 1999 को दो बच्चे पैदा हुए । उसने आगे यह अभिवचन किया कि उसने अपीलार्थी के साथ रहने का प्रयास किया क्योंकि अपीलार्थी दूसरी महिला के साथ रह रहा था । अपीलार्थी के साथ उसका रहना संभव नहीं था । पहले अपीलार्थी ने विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया था, जो 26 सितंबर, 2002 को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । उसने इस तथ्य को स्वीकार किया कि अपीलार्थी और कल्पना उपाध्याय के विरुद्ध उसके द्वारा न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग के समक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन फाइल मामला लंबित है । अभिवचनों के आधार पर प्रत्यर्थी ने वाद की खारिजी का अनुरोध किया ।

5. विचारण न्यायालय ने विवाद्यक विरचित किए कि क्या प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ क्रूरता की और क्या प्रत्यर्थी जारकर्म में रह रहा था और क्या पूर्ववर्ती विवाद जो विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किया गया था, वर्तमान वाद संधार्य है और क्या अपीलार्थी दूसरी महिला के साथ रह रहा है, विचारण न्यायालय ने वाद खारिज किया ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विरुद्ध झूठे अभिकथन किए । इन अभिकथनों को आपराधिक मामले और सिविल मामले में विचारण न्यायालय द्वारा सही नहीं पाया गया । अपीलार्थी को निलंबित किया गया और बाद में उसका निलंबन प्रतिसंहृत किया गया । प्रत्यर्थी द्वारा फाइल आपराधिक मामले को भी विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किया गया । ये पश्चात्वर्ती घटनाएं हैं, अत: वर्तमान वाद संधार्य है और अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है । अपनी दलीलों के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने 2 जुलाई, 2013 को 2006 के कुटुम्ब

न्यायालय अपील सं. 131 (**श्री महेश गणपत पैगुडे** बनाम **सौ. मोहिनी महेश पैगुडे**) में दिए गए बम्बई उच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया ।

7. प्रत्यर्थी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ ।

8. अपीलार्थी ने स्वयं की परीक्षा कराई । उन्होंने अन्य साक्षी गिरधारी लाल राय, ज्ञानी लाल श्रीवास, गंगा राम और उमाशंकर की परीक्षा कराई । उन लोगों ने अपीलार्थी की ओर से अपना शपथ-पत्र प्रस्तुत किया । उन लोगों की प्रतिपरीक्षा की गई । प्रत्यर्थी ने अपना शपथ-पत्र, अपनी माता श्रीमती वैजंती बाई शंकर जो प्रत्यर्थी का पड़ोसी था, ने भी प्रत्यर्थी के समर्थन में अपने शपथ-पत्र प्रस्तुत किए । उन लोगों की प्रतिपरीक्षा कराई गई ।

9. मामले का स्वीकृत तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विरुद्ध अभिकथन किए कि वह एक अन्य स्त्री कल्पना उपाध्याय के साथ रह रहा है । शिकायत जारकर्म का अभिकथन करते हुए अपीलार्थी के विरुद्ध कृषि विभाग में प्रत्यर्थी द्वारा दर्ज कराई गई थी कि वह कल्पना नाम की महिला के साथ रह रहा है और उसने दूसरा विवाह कर लिया है । अपीलार्थी को निलंबित किया गया और उसके विरुद्ध विभागीय जांच संस्थित की गई । आदेश तारीख 27 दिसंबर, 2004 के द्वारा नियमित विभागीय जांच करने के पश्चात् उसे आरोपों से मुक्त किया गया और उसका निलंबन रद्द किया गया ।

10. प्रत्यर्थी ने यह अभिकथित करते हुए एक प्राइवेट शिकायत भी फाइल की कि अपीलार्थी जारकर्म में रह रहा है और दूसरा विवाह कर लिया है । भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन अपीलार्थी और श्रीमती कल्पना उपाध्याय के विरुद्ध अपराध दर्ज किया गया । विचारण न्यायालय ने तारीख 10 अक्तूबर, 2007 के आदेश द्वारा अपीलार्थी और कल्पना उपाध्याय को भारतीय दंड संहिता की धारा 494/34 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

11. पहले अपीलार्थी ने विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए वाद

फाइल किया । पूर्वोक्त वाद सिविल वाद संख्या 8-ए/2001 में पारित तारीख 26 सितंबर, 2002 के निर्णय द्वारा खारिज किया । पूर्वोक्त वाद में प्रत्यर्थी ने यह अभिकथन किए कि अपीलार्थी कल्पना उपाध्याय के साथ जारकर्म में रह रहा है और उसने दूसरा विवाह कर लिया है । विचारण न्यायालय ने सिविल वाद सं. 8-ए/2001 में दिए गए अपने निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी द्वारा लगाए गए अभिकथन कि अपीलार्थी ने कल्पना उपाध्याय के साथ दूसरा विवाह कर लिया है और वह उस स्त्री के साथ रह रहा है तथा उसके विवाह बंधन से दो बच्चे पैदा हुए हैं, सही नहीं है और साबित नहीं हुआ ।

12. इस तथ्य के बावजूद कि विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी के अभिवचन के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित किए कि वह कल्पना उपाध्याय के साथ रह रहा है और उसने उसके साथ विवाह कर लिया है तथा उनके विवाह बंधन से दो बच्चे पैदा हुए, सही नहीं है । प्रत्यर्थी ने बार-बार वही अभिकथन किए । विचारण न्यायालय के निर्णय के पश्चात्, प्रत्यर्थी द्वारा वर्ष 2002 में वही अभिकथन लगाकर अपीलार्थी के कृषि विभाग में शिकायत की गई थी । अपीलार्थी को निलंबित किया गया और उसकी विभागीय जांच की गई । तत्पश्चात् उसे आरोप से मुक्त किया गया और उसके निलंबन को रद्द किया । फिर भी प्रत्यर्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन अपीलार्थी और कल्पना उपाध्याय के विरुद्ध प्राइवेट शिकायत दर्ज की । विचारण न्यायालय ने उपरोक्त आरोप से अपीलार्थी को उन्मुक्त किया ।

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नरेन्द्र** बनाम **के. मीना**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया कि यदि पत्नी द्वारा अभिकथन किया गया हो कि पति जारकर्म में रह रहा है, यद्यपि अभिकथन साबित नहीं पाए गए :–

> "16. कमला नामक नौकरानी से विवाहेत्तर संबंध के बारे में अभिकथनों से संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा साक्ष्य का

---

[1] (2016) 9 एस. सी. सी. 455 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 4599.

पुनर्मूल्यांकन सही प्रतीत नहीं होता । इस आशय का पर्याप्त साक्ष्य है कि अपीलार्थी के निवास में कमला नामक काम करने वाली कोई नौकरानी नहीं थी । उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालने के लिए किसी रिस्तेदार के कुछ प्रकथनों का अवलंब लिया कि कमला नामक एक स्त्री थी किंतु उच्च न्यायालय ने इस तथ्य की अनदेखी की कि प्रत्यर्थी पत्नी ने नौकरानी के साथ अपीलार्थी के विवाहेत्तर संबंध के बारे में अभिकथन किए हैं न कि किसी अन्य से । यदि कमला नामक कोई रिस्तेदार थी, जो अपीलार्थी के पास आया-जाया करती थी तो भी विवाहेत्तर संबंध के बारे में प्रत्यर्थी द्वारा लगाए गए अभिकथनों को सिद्ध करने के लिए कोई सामग्री नहीं है । वास्तव में ऐसे अभिकथनों को सिद्ध करना बहुत कठिन है किंतु वहीं यह भी बराबर सही है कि विवाहेत्तर संबंध रखने के किसी व्यक्ति के चरित्र से संबंधित अभिकथन किसी भी व्यक्ति चाहे वह पति या पत्नी, के लिए बहुत कपटपूर्ण है । हमने साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया किंतु हम यह साबित करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं पा सके कि अपीलार्थी का किसी के साथ विवाहेत्तर संबंध था । आधारहीन और निरर्थक अभिकथनों के सिवाय इसमें तनिक भी साक्ष्य नहीं है जिससे यह पता चलता हो कि प्रत्यर्थी द्वारा नामित नौकरानी से अपीलार्थी का प्रेमालाप जैसा कुछ भी हो । हम बिल्कुल मिथ्या अभिकथनों के लगाए जाने और वह भी विवाहेत्तर जीवन के संबंध में, को बहुत गंभीर मानते हैं और निश्चित ही यह मानसिक क्रूरता का कारण हो सकता है ।

18. इस मामले के तथ्यों को उक्त विनिश्चाधार पर लागू करते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए प्रवृत्त हैं कि प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा लगाए गए अपुष्ट अभिकथन और उसके द्वारा आत्महत्या करने की धमकी और प्रयास मानसिक क्रूरता के समान है । अतः, विवाह अधिनियम की धारा 13 (1)(iक) के अधीन आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किए जाने योग्य हैं ।"

14. इस मामले में भी प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विरुद्ध बारबार जारकर्म के अभिकथन किए, यद्यपि आपराधिक कार्यवाही में सिविल न्यायालय द्वारा और विभागीय जांच में अभिकथन सही नहीं पाए गए । अतः, हमारी राय में अपीलार्थी क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है ।

15. अगला प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान वाद पूर्व निर्णय को ध्यान में रखते हुए, संधार्य है । पूर्वतर निर्णय वर्ष 2002 में पारित किया गया था और निर्णय के पश्चात् प्रत्यर्थी ने उसके विभाग में अपीलार्थी के विरुद्ध परिवाद फाइल किया था । उसे निलंबित किया गया और उसकी विभागीय जांच की गई । उसने अपीलार्थी के विरुद्ध आपराधिक मामला भी फाइल किया । अपीलार्थी आरोपों से दोषसिद्ध हुआ, अतः, हमारी राय में पश्चात्वर्ती तथ्यों के आधार पर वर्तमान वाद संधार्य है । अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है ।

16. अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील मंजूर की जाती है । विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त किया जाता है । विवाह-विच्छेद की डिक्री अपीलार्थी के पक्ष में मंजूर की जाती है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच संपन्न विवाह को विघटित किया जाता है । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता ।

अपील मंजूर की गई ।

पा.

सपना (श्रीमती)

बनाम

नीरज खंडेलवाल

तारीख 15 दिसम्बर, 2017

न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – 10 और 13 – न्यायिक पृथक्करण और विवाह-विच्छेद द्वारा पत्नी और उसके मायके के लोगों के विरुद्ध गाली गलौज युक्त भद्दी भाषा का प्रयोग किया जाना व मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाना – पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए याचिका फाइल किया जाना – पति द्वारा क्रूरता को अभिलेख पर साबित किया जाना – फिर भी कुटुंब न्यायालय द्वारा साक्ष्य का अनदेखा करते हुए न्यायिक पृथक्करण का आदेश पारित किया – यदि अभिलेख पर मानसिक क्रूरता का व्यवहार साबित हो गया है, तो कुटुंब न्यायालय को न्यायिक पृथक्करण के अनुतोष के बजाय विवाह को विघटित करने वाला याचित अनुतोष प्रदान करना चाहिए और विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करनी चाहिए ।

वर्तमान मामले के संक्षेप में तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी के साथ अपीलार्थी का विवाह हिन्दू अनुष्ठानों और रीतिरिवाजों के अनुसार बेवर, जिला अजमेर में तारीख 30 जनवरी, 2011 को संपन्न हुआ था । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पति-पत्नी वैवाहिक संबंधों को सौहार्दपूर्ण बनाने में असफल रहे थे और अपीलार्थी-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध बहुत सी शिकायतें यह अधिकथित करते हुए फाइल की कि उसके साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया है । अपीलार्थी-पत्नी ने याचिका कोटा के कुटुंब न्यायालय के समक्ष अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(आई. ए.) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह का विघटन चाहते हुए फाइल की और यह सिद्ध करने के लिए प्रत्यर्थी-पति के आचरण और व्यवहार के संबंध में बहुत से उदाहरणों का हवाला दिया कि उसके साथ मानसिक क्रूरता का व्यवहार किया गया है । उसने यह अधिकथित किया कि प्रत्यर्थी के कुटुंब के सदस्यों की ओर से दहेज की भारी मांग की गई थी परन्तु मांगें पूरी न होने के कारण प्रत्यर्थी और उसके ससुराल वालों ने उसके साथ बुरे से बुरा बर्ताव किया

तथा उन्होंने हर समय कुटुंब के सदस्यों व पड़ोसियों के सामने अपीलार्थी को अपमानित करना शुरू कर दिया और उसके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया और उसका जीवन दुखी बना दिया और इससे उसका अपनी ससुराल में रहना असंभव हो गया और ऐसी स्थिति पैदा कर दी गई कि अपीलार्थी को अपने माता-पिता के घर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा और प्रत्यर्थी ने उसके विरुद्ध बहुत ही गंदी गालियों का प्रयोग किया और उसे और उसके कुटुंब के सदस्यों को धमकी दी कि उसे बिना मांग पूरी किए अपनी ससुराल वापस नहीं आना है । उनके कुटुंब के सदस्यों, समुदाय के सदस्यों के हस्तक्षेप से उनके वैवाहिक भेदभावों का समाधान करने के बहुत से प्रयास किए गए परन्तु कुछ भी परिणाम नहीं निकला और अंततः उसने प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों के अपमान और व्यवहार के कारण, तारीख 14 दिसम्बर, 2012 को अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(आई. ए.) के अधीन उसके साथ किया जा रहा क्रूरतापूर्ण व्यवहार के आधार पर कोटा के विद्वान् कुटुंब न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद याचिका फाइल की । कुटुंब न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, विवाद्यक सं. 1 का निर्णय अपीलार्थी के पक्ष में करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उसके साथ क्रूरता का व्यवहार किया जा रहा है परन्तु फिर भी जब मामले में अनुतोष प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ विचार किया गया जैसाकि उनके विवाह-विच्छेद के विघटन के लिए प्रार्थना की गई है, तो कुटुंब न्यायालय ने तारीख 6 मार्च, 2017 के आक्षेपित निर्णय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित कर दी । वर्तमान प्रकीर्ण अपील तारीख 6 मार्च, 2017 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है जिसके द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(iक)(आई. ए.) के अधीन परिकल्पित क्रूरता के अभिकथन को साबित किए जाने के पश्चात् विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की गई । हमारे विनिर्धाराणार्थ जो बिंदु उद्भूत हुआ है, वह यह है कि पत्नी जिसने क्रूरता का आरोप लगाते हुए अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(iक) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह को विघटित किए जाने की ईप्सा करते हुए याचिका फाइल की है और उसके द्वारा लगाए गए आरोप विद्वान् कुटुंब न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर साबित हो जाते है, तो क्या तब भी उसको याचित विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री मंजूर की जा सकती है । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-पत्नी अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्री के आधार पर यह स्थापित करने की स्थिति है जो प्रत्यर्थी-पति द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया गया है जो मौखिक रूप से गाली गलौच करता था और भद्दा दुर्व्यवहार और अपमानजनक भाषा का प्रयोग करने के द्वारा उसको अपमानित किया करता था जिसके कारण उसकी मानसिक शांति निरंतर रूप से व्यवधानपूर्ण रहती थी और वह उसके विरुद्ध एक दांडिक मामला फाइल करने की सीमा तक मजबूर हो गई जिसमें दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया जा चुका है । तत्समय, यह न्यायालय यह अभिलेख करता है कि जहां तक अपीलार्थी के साथ क्रूरता का बर्ताव किए जाने के संबंध में विवाद्यक संख्या 1 पर विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाले जाने का संबंध है, क्रूरता से किए जा रहे व्यवहार से है, किए गए प्रश्नों पर प्रत्यर्थी-पति द्वारा विवाद्यक संख्या 1 के संबंध में निकाले गए निष्कर्ष को चुनौती देते हुए कोई प्रति-आक्षेप फाइल नहीं किया गया है । निर्विवाद रूप से, यह याचिका अपीलार्थी-पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री ईप्सा करते हुए फाइल की है और वह अभिलेख के आधार पर यह साबित कर पाने में समर्थ रही है कि उसके साथ क्रूरता का बर्ताव किया जा रहा था जो अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(iक) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए लिए एक आधार है और जिसको जिसे तारीख 27 मई, 1976 की अधिसूचना द्वारा 1976 के संशोधन अधिनियम पारित किए जाने के पश्चात् लागू किया गया है, इसलिए विद्वान् कुटुंब न्यायालय के लिए ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता है कि उसको (अपीलार्थी-पत्नी को) अभी भी विवाह-विच्छेद की डिक्री, जैसीकि उसके द्वारा प्रार्थना की गई, के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की जाए और इसके विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा उसको न्यायिक पृथक्करण जिसके लिए उसने कभी प्रार्थना नहीं की, प्रदान किए जाने के बाबत कोई न्यायौचित्य अभिलिखित नहीं किया गया है । वर्तमान प्रकीर्ण अपील सफल होती और एतद्द्वारा मंजूर की जाती है । अपीलार्थी ने अभिलेख पर उपलब्ध साबित तथ्यों के आधार पर अपने विवाह को विघटित किए जाने और विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर किए जाने के प्रयोजनार्थ अपने मामले को साबित कर पाने में सक्षम हो गई है । तद्नुसार, विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 6 मार्च, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री जिसके द्वारा उसको न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की गई थी, विवाह के विघटन की डिक्री में संपरिवर्तित किया जाता है और दोनों पक्षकारों के मध्य उनके

तारीख 30 जनवरी, 2011 को हुए संपन्न विवाह को विघटित किया जाता है और अपीलार्थी को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान की जाती है जिसके लिए उसने प्रार्थना की थी । वर्तमान प्रकीर्ण अपील का निस्तारण तारीख 6 मार्च, 2017 के निर्णय और डिक्री में उपांतरण के साथ किया जाता है । लागत के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है । (पैरा 23, 24, 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2002] (2002) 2 एस. सी. सी. 296 :
जी. वी. एन. कामेश्वार राव बनाम **जी. जाबिली ।** 18

अपील (सिविल) अधिकारिता : 2017 की डी. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1775.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

याचियों की ओर से श्री समरथ शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी – वर्तमान प्रकीर्ण अपील तारीख 6 मार्च, 2017 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है जिसके द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(iक)(आई. ए.) के अधीन परिकल्पित क्रूरता के अभिकथन को साबित किए जाने के पश्चात् विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की गई ।

2. संक्षेप में, हमारे विनिर्धाराणार्थ जो बिंदु उद्भूत हुआ है, वह यह है कि पत्नी जिसने क्रूरता का आरोप लगाते हुए अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(iक) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह को विघटित किए जाने की ईप्सा करते हुए याचिका फाइल की है और उसके द्वारा लगाए गए आरोप विद्वान् कुटुंब न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर साबित हो जाते हैं, तो क्या तब भी उसको याचित विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री मंजूर की जा सकती है ।

3. मामले के सुसंगत तथ्य जो विवाह के विनिर्धाराणार्थ आवश्यक है और इस हेतु प्रयोजनार्थ सुसंगत ये हैं कि प्रत्यर्थी के साथ अपीलार्थी का

विवाह बेवर, जिला अजमेर में तारीख 30 जनवरी, 2011 को हिन्दू रीतिरिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ था । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पति-पत्नी वैवाहिक संबंधों को सौहार्दपूर्ण बनाए रखने में असफल रहे और अपीलार्थी-पत्नी को प्रत्यर्थी-पति से बहुत सी शिकायतें थीं और उसके द्वारा निरंतर रूप से अधिकथित किया गया कि उसके साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया है ।

4. अपीलार्थी-पत्नी द्वारा कोटा के कुटुंब न्यायालय के समक्ष अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(आई. ए.) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह को विघटित किए जाने की ईप्सा करते हुए याचिका इस आधार पर फाइल की गई कि उसके विरुद्ध क्रूरता का व्यवहार किया गया है और उसने इस बात को साबित करने के लिए कि मानसिक क्रूरता का व्यवहार किया गया है प्रत्यर्थी के पति के आचरण और व्यवहार के संबंध में बहुत से उदाहरणों का हवाला दिया है । उसके द्वारा यह अधिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी के कुटुंब के सदस्यों के द्वारा दहेज की भारी मांग की गई परन्तु उनकी मांग पूरी न किए जाने के कारण प्रत्यर्थी और उसके ससुराल वालों का व्यवहार बुरे से बहुत ही बुरे में तब्दील हो गया । तथा उन्होंने हर समय कुटुंब के सदस्यों व पड़ोसियों के सामने अपीलार्थी को अपमानित करना शुरू कर दिया और उसके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जा रहा था और उसका जीवन दुखी बना दिया गया था और इससे उसका अपनी ससुराल में रह पाना असंभव हो गया और ऐसी स्थिति पैदा कर दी गई कि अपीलार्थी को अपने माता-पिता के घर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा और प्रत्यर्थी ने उसके और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध बहुत ही गंदी गालियों का प्रयोग करते हुए कहा कि उसे बिना मांगें पूरी किए अपनी ससुराल वापस नहीं आना है । उनके कुटुंब के सदस्यों, समुदाय के सदस्यों द्वारा उनके वैवाहिक भेदभावों का समाधान करने के लिए बहुत से प्रयास किए गए परन्तु कुछ भी परिणाम नहीं निकला और अंततः प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों के अमानवीय और दयनीय व्यवहार के कारण, उसके पास तारीख 14 दिसम्बर, 2012 को अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(आई. ए.) के अधीन उसके साथ किया जा रहा क्रूरतापूर्ण व्यवहार के कारण कोटा के विद्वान् कुटुंब न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद की याचिका फाइल करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा है । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन अपराध के लिए एक मामला भी फाइल किया था और

वह भी लंबित है और घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के लागू होने से महिला संरक्षण के अधीन एक मामला भी फाइल किया था ।

5. प्रत्यर्थी द्वारा लिखित कथन किया गया और पक्षकारों के अभिवाकों के आधार पर, विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने कुल मिलाकर निम्नलिखित तीन विवाद्यक विरचित किए, जो इस प्रकार हैं :–

"1. क्या विवाह-विच्छेद याचिका में किए गए प्रकथन के आधार पर याची के प्रति प्रत्यर्थी का व्यवहार क्रूरतापूर्ण कहा जा सकता है ?

2. क्या याची प्रत्यर्थी के विरुद्ध याची को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान की जा सकती है ?

3. अन्य कोई अनुतोष ?"

6. अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा के समर्थन में, अपना कथन आवेदक साक्षी 1 सपना के रूप अभिलिखत कराया और प्रत्यर्थी ने भी अपना कथन एन. ए. डब्ल्यू.1 नीरज खंडेलवाल के रूप में अभिलिखत कराया था ।

7. कुटुंब न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, विवाद्यक सं. 1 का निर्णय अपीलार्थी के पक्ष में करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उसके साथ क्रूरता का व्यवहार किया जा रहा है परन्तु फिर भी जब मामले में अनुतोष प्रदान किए जाने प्रयोजनार्थ विचार किया गया जैसाकि उनके विवाह-विच्छेद के विघटन के लिए प्रार्थना की गई है, तो कुटुंब न्यायालय ने तारीख 6 मार्च, 2017 के आक्षेपित निर्णय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित कर दी ।

8. प्रत्यर्थी द्वारा विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा विवाद्यक संख्या 1 जिसको अपीलार्थी के पक्ष में निर्णीत किया गया है, के संदर्भ में अभिलिखित किए गए निष्कर्ष को चुनौती देते हुए प्रति-आक्षेप फाइल नहीं किया गया है ।

9. अपीलार्थी के काउंसेल ने अपनी दलील में मुख्य रूप से इस बात पर जोर दिया है कि एक बार अपीलार्थी ने सफलतापूर्वक यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया करता था, तो फिर उनका विवाह विघटन करके विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री मंजूर करना अनुचित है और न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान किया जाना युक्तिसंगत नहीं और न्यायिक

पृथक्करण की डिक्री अपास्त की जाए और न्यायालय यह घोषित करे कि उनका विवाह विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के द्वारा विघटित हो गया है ।

10. काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि अपीलार्थी ने इस तथ्य को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है कि प्रत्यर्थी दहेज की मागों के पूरा न होने के कारण उसके साथ मारपीट किया करता था और प्रत्यर्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन पुलिस द्वारा आरोप पत्र फाइल किया जा चुका है और विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा उस पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है और जब प्रत्यर्थी द्वारा क्रूरता से किए जा रहे व्यवहार को अपीलार्थी के तथ्य को विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा स्वीकार किया जा चुका है तो न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री जैसाकि प्रार्थना की गई है, मंजूर न किए जाने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता और यही विवाह-विच्छेद के अनेक आधारों में एक आधार है जिसका उल्लेख अधिनियम की धारा 13 में किए गए संशोधन के पश्चात् किया है जिसे तारीख 27 मई, 1976 से 1976 के संशोधन अधिनियम 68 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है ।

11. काउंसेल ने यह भी दलीलें दी हैं कि जहां तक प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन के संबंध में फाइल किए गए आवेदन का संबंध है, यह आवेदन और कुछ नहीं बल्कि कागजी साक्ष्य सृजित करना है यह तथ्य कि तारीख 21 जुलाई, 2015 को पारित एक पक्षीय आदेश के पश्चात् इस आदेश के निष्पादन के लिए कोई प्रयास नहीं किए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी के पक्ष में न्यायिक पृथक्करण की डिक्री जो विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 6 मार्च, 2017 के आक्षेपित निर्णय और आदेश प्रदान की गई, बजाय विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के द्वारा उनके विवाह को विघटित किए जाने का मामला बनता है ।

12. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी के काउंसेल ने इस प्रार्थना का विरोध किया और निवेदन किया कि कुटुंब न्यायालय द्वारा न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित करते हुए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया गया है जिसे अवैध या मानमाना नहीं कहा जा सकता है और मात्र इस कारणवश कि अपीलार्थी द्वारा विवाह के विघटन के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री की प्रार्थना की गई, और यद्यपि क्रूरता का आरोप साबित हुआ है तो भी विद्वान्

कुटुंब न्यायालय को विवाह विघटन के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री मंजूर करने का अधिकार था, जैसीकि प्रार्थना की गई और चूंकि विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया न्यायिक विवेकाधिकार था जिसे अभिलेख पर सामग्री द्वारा समर्थन प्राप्त था, इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है ।

13. हमने पक्षकारों के काउंसेलों को सुना और उनकी सहायता से अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन भी किया ।

14. वर्तमान अपील में विचारणार्थ उद्भूत हुए प्रश्न का परीक्षण किए जाने का परीक्षण किए जाने के पूर्व यह उपयुक्त होगा कि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के उपबंधों उनमें बाद में किए गए संशोधन और विशेष रूप से उन संशाधनों पर जो 1976 में 1955 के अधिनियम में किए गए, जिनके द्वारा संसद् ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए विवाह के विघटन की परिधि का विस्तार करते हुए व्यापक संशोधन किए हैं, जो इस प्रकार हैं :–

> "**संशोधनपूर्व धारा 10 – न्यायिक पृथक्करण –** (1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, दूसरा पक्षकार उस आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए जिला न्यायालय को अर्जी पेश कर सकेगा ।
>
> (क) याचिका के फाइल करने से तुरंत पूर्व दो वर्ष से कम समय की निरंतर कालावधि के लिए याची को अभित्यक्त किया हो; या
>
> (ख) याची के साथ इस तरह की क्रूरता का व्यवहार किया कि याचिका के दिमाग में युक्तियुक्त आशंका कारित हुई है कि याची के लिए दूसरे पक्षकार के साथ रहना नुकसानदायक और हानिकारक होगा; या
>
> (ग) याची के फाइल करने से पूर्व एक वर्ष से भी कम कालावधि के लिए वह कुष्ठ रोग के विषाक्त रूप से पीड़ित है; या
>
> (घ) याचिका फाइल करने से पूर्व तीन वर्ष से कम की कालावधि के लिए संसूचनात्मक रूप में वीनेरियल बीमारी से

पीड़ित, याची से बीमारी के बारे में संविदा नहीं की गई है; या

(ङ) याचिका के फाइल करने से पूर्व दो वर्ष से कम समय की कालावधि लिए निरंतर दिमाग अस्वस्थ रहा है; या

(च) विवाह की अनुष्ठापन के पश्चात्, उसने पति/पत्नी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के साथ यौन मैथुन किया था ।

स्पष्टीकरण, – इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तद्नुसार लगाए जाएंगे ।

(2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किन्तु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को विखंडित कर सकेगा ।"

"पश्च-संशोधन धारा 10 – न्यायिक पृथक्करण – (1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा 13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी पेश कर सकेगा ।

(2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किन्तु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा

करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को विखंडित कर सकेगा ।"

"संशोधन पूर्व धारा 13 – विवाह-विच्छेद – कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –

(i) व्याभिचार में रह रहा है; या

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तन हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है; या

(iii) याचिका के फाइल करने से पूर्व तीन वर्ष से कम समय की कालावधि लिए निरंतर मानसिक रूप से बीमार रहा है; या

(iv) याची के फाइल करने से पूर्व तीन वर्ष से कम कालावधि के लिए वह कुष्ठ रोग के विषाक्त रूप से पीड़ित है; या

(v) याचिका फाइल करने से पूर्व तीन वर्ष से कम की कालावधि के लिए संसूचनात्मक रूप में वीनेरियल बीमारी से पीड़ित है; या

(vi) दूसरा पक्षकार किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है; या

(vii) दूसरा पक्षकार जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है जिन्होंने उसके बारे में यदि वह पक्षकार जीवित होता तो स्वाभाविकतः सुना होता;

(1क) विवाह का कोई भी पक्षकार, विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात् विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगा –

(i) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के धारण के

पश्चात् एक वर्ष पश्चात् या उससे ऊपर की कालावधि भर उन पक्षकारों के बीच सहवास का कोई पुनरारम्भ नहीं हुआ है; या

(ii) कि ऐसी कार्यवाही पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, दाम्पत्याधिकार के प्रत्यास्थापन की डिक्री के पश्चात् तक वर्ष या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्षकारों के बीच दाम्पत्याधिकारों का कोई प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।

(2) पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगी –

(i) कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, पति ने ऐसे प्रारंभ के पूर्व फिर विवाह कर लिया था या अर्जीदार के विवाह के अनुष्ठान के समय पति की कोई ऐसी दूसरी पत्नी जीवित थी जिसके साथ उसका विवाह ऐसे प्रारंभ के पूर्व हुआ था :

परन्तु यह तब कि दोनों दशाओं में दूसरी पत्नी अर्जी के उपस्थापन के समय जीवित हो; या

(ii) कि पति विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् बलात्संग, गुदामैथून या पशुगमन का दोषी रहा है; या

"पश्च-संशोधन धारा 13 – विवाह-विच्छेद – कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह- विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –

(i) दूसरे पक्षकार के विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है; या

(iक) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है; या

(iख) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरंतर कालावधि पर अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है; या

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तन हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है; या

(iii) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरंतर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण – इस खंड में, –

(क) 'मानसिक विकार' पद से मानविक बीमारी, मस्तिष्क संरोध या अपूर्ण विकास, मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य विकार या निःशक्तता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विखंडित मनस्कता भी है;

(ख) 'मनोविकृति' पद से मस्तिष्क का दीर्घस्थायी विकार या निःशक्तता (चाहे इसमें बुद्धि की अवसामान्यता हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्षकार का आचरण असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता है या नहीं; या

(iv) दूसरा पक्षकार उग्र और असाध्य कुष्ठ से पीड़ित रहा है; या

(v) दूसरा पक्षकार संचारी रूप से रजिज रोग से पीड़ित रहा है; या

(vi) दूसरा पक्षकार किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है; या

(vii) दूसरा पक्षकार जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है जिन्होंने उसके बारे में यदि वह पक्षकार जीवित होता तो स्वाभाविकतः सुना होता ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा में 'अभित्यजन' पद से विवाह

के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तद्नुसार लगाए जाएंगे ।

(iक) विवाह का कोई भी पक्षकार, विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात् विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगा –

(i) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के धारण के पश्चात् एक वर्ष पश्चात् या उससे ऊपर की कालावधि भर उन पक्षकारों के बीच सहवास का कोई पुनरारम्भ नहीं हुआ है; या

(ii) कि ऐसी कार्यवाही पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, दाम्पत्याधिकार के प्रत्यास्थापन की डिक्री के पश्चात् एक वर्ष या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्षकारों के बीच दाम्पत्याधिकारों का कोई प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।

(2) पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगी –

(i) कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, पति ने ऐसे प्रारंभ के पूर्व फिर विवाह कर लिया था या अर्जीदार के विवाह के अनुष्ठान के समय पति की कोई ऐसी दूसरी पत्नी जीवित थी जिसके साथ उसका विवाह ऐसे प्रारंभ के पूर्व हुआ था :

परन्तु यह तब कि दोनों दशाओं में दूसरी पत्नी अर्जी के उपस्थापन के समय जीवित हो; या

(ii) कि पति विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् बलात्संग, गुदामैथुन या पशुगमन का दोषी रहा है; या

(iii) किसी हिन्दू दत्तक तथा भरणपोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) की धारा 18 के अधीन वाद में या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1973 का 2) की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में, पत्नी को भरणपोषण दिलवाने के लिए पति के विरुद्ध, यथास्थिति, डिक्री या आदेश इस बात के होते हुए भी पारित किया गया है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिक्री या आदेश के पारित किए जाने के समय से एक वर्ष या उससे ऊपर की कालावधि भर पक्षकार के बीच सहवास का पुनरारम्भ नहीं हुआ है;

(iv) कि उसका विवाह (चाहे विवाहोत्तर संभोग हुआ हो या नहीं) उसकी पन्द्रह वर्ष की आयु हो जाने के पूर्व अनुष्ठापित किया गया था उसने पन्द्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् किन्तु अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवाह का निराकरण कर दिया है ।

स्पष्टीकरण – यह खण्ड उस विवाह को भी लागू होगा जो विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया है ।

15. 1976 के हिन्दू विधि (संशोधन) अधिनियम को पारित किए जाने के पूर्व क्रूरता मात्र न्यायिक पृथक्करण का आधार था और याची द्वारा यह साबित किया जाना अपेक्षित होता था कि प्रत्यर्थी ने उसके साथ इस सीमा तक क्रूरता का व्यवहार किया है जिसके कारण उसके मस्तिष्क में युक्तिसंगत रूप से यह आशंका उत्पन्न हो गई है कि उसको दूसरे पक्ष के साथ रहना हानिकारक और क्षतिकर होगा ।

16. पूर्ववर्ती हिन्दू विधि के अंतर्गत, न्यायिक पृथक्करण का कोई उपबंध नहीं था सिवाय कुछ अपवादिक मामलों क्योंकि हिन्दू विवाह को आरंभिक प्रक्रम पर, जब संसद् द्वारा 1955 का हिन्दू विवाह अधिनियम अधिनियमित किया गया, अविभाज्य संघ माना जाता था लेकिन समाज की संरचना में परिवर्तन के साथ विवाह-विच्छेद को 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम के अंतर्गत मान्यता प्रदान की गई । 1976 के हिन्दू विधि (संशोधन) अधिनियम के पारित होने के पूर्व न्यायिक पृथक्करण और विवाह-विच्छेद के आधार भिन्न थे और 1976 के अधिनियम ने उन आधारों को एक दूसरे के सदृश बना दिया ।

17. 1976 के अधिनियम ने विवाह-विच्छेद की विधि को उदार बना दिया और हिन्दू विवाह की संस्कारिक प्रकृति को भी परिवर्तित कर दिया । 1955 के अधिनियम में पहले वर्ष 1964 से संशोधन किया गया था जिसके अंतर्गत अपात्र को भी विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन किए जाने की अनुमति दी गई थी और 1976 के विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम द्वारा 1964 के अधिनियम द्वारा विहित समय-सीमाओं में शिथिलता प्रदान की गई । 1976 विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम द्वारा 1955 के अधिनियम की धारा 13 (1क) के अधीन विवाह के विघटन के लिए समय-सीमा को कम कर दिया गया । इस उपबंध के अधीन न्यायिक पृथक्करण और विवाह-विच्छेद, दोनों के लिए ही सामान्य आधार बनाए गए और 1955 के अधिनियम की धारा 13(1) के अधीन विवाह के विघटन के लिए विनिर्दिष्ट समय-सीमा का लोप कर दिया गया और तत्समय 1955 के अधिनियम की धारा 13बी के अधीन पारस्परिक सहमति के द्वारा विवाह-विच्छेद के नए आधार भी अंतस्थापित कर दिए गए । 1976 का अधिनियम 1955 के अधिनियम की धारा 13(2)(iii) और (iv) के अधीन वर्णित विवाह-विच्छेद के दो और आधार भी जोड़े गए और तत्समय, इसमें विवाह-विच्छेद हेतु आवेदन करने के लिए समय-सीमा को तीन वर्ष के स्थान पर एक वर्ष तक घटा दिया गया । 1976 का विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम जिसके अंतर्गत विवाह-विच्छेद के लिए क्रूरता को भी आधार बनाया गया, ने इस खंड की शब्दरचना को परिवर्तित कर दिया – "प्रत्यर्थी ने याची के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है" । "क्रूरता" की परिभाषा में परिवर्तन का यह अर्थ होगा कि कोई कृत्य या लोप या आचरण जो न्यायिक पृथक्करण या विवाह-विच्छेद के लिए क्रूरता को एक आधार के रूप में गठित करता है, यद्यपि इस परिवर्तन के कारण याची के मस्तिष्क में किसी प्रकार की आशंका उत्पन्न नहीं होती है ।

18. उच्चतम न्यायालय ने **जी. वी. एन. कामेश्वर राव** बनाम **जी. जाबिली**[1] वाले मामले में ने 1955 के अधिनियम की धारा 13(क)(iक) के अर्थांतर्गत "क्रूरता" की विवेचना करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि क्रूरता को विपक्षी पक्ष को पीड़ित करने वाले आशय के साथ कारित किया गया कार्य कहा जा सकता है और निर्णय के पैरा 9 और 10 में यह मताभिव्यक्ति की :–

---

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 296.

9. हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(iक) के अधीन पति या पत्नी द्वारा याचिका प्रस्तुत किए जाने पर विवाह को इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जा सकता है कि दूसरे पक्षकार ने विवाह संपन्न कराए जाने के पश्चात् याची के साथ क्रूरता का बर्ताव किया है । अधिनियम में 'क्रूरता' को परिभाषित नहीं किया गया है । हिन्दू विवाह अधिनियम के कुछ उपबंध को 1976 के हिन्दू विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम द्वारा संशोधित किए गए थे इस संशोधन से पूर्व, 'क्रूरता' अधिनियम की धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण के लिए एक आधार था । इस धारा के अधीन 'क्रूरता' को विशेषण वाक्यांश अर्थात् जहां तक याची के मस्तिष्क में युक्तियुक्त आशंका के बारे में है कि याची के लिए दूसरे पक्षकार के साथ रहना हानिकर या क्षतिकर होगा, 1976 का संशोधन अधिनियम द्वारा 'क्रूरता' को धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए आधार बनाया गया जिसके सुसंगत उपबंध इस प्रकार हैं –

"13. विवाह-विच्छेद (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –

(i) * * * * *

(iक) दूसरे पक्षकार ने विवाह अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है, या"

(iख) * * * * *

(ii)- (ix) * * * * *

10. शब्दों, जो 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की असंशोधित धारा 10 में 'क्रूरता' को वर्णित करते हैं, के लोप का, इस अर्थ में कुछ महत्व है कि इसे साबित किया जाना आवश्यक नहीं है कि क्रूरता की प्रकृति याची के दिमाग में युक्तियुक्त आशंका कारित करने वाली है कि याची का दूसरे पक्षकार के साथ

> रहना हानिकारक होगा । अंग्रेजी न्यायालयों ने कुछ पूर्ववर्ती विनिश्चय के कुछ में 'क्रूरता' को ऐसे कार्य के रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया जिसमें जीवन, अंग या स्वास्थ्य के लिए नुकसान कारित करने या ऐसे खतरे की युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करने वाला आचरण अंतर्वलित है । किन्तु हम यह नहीं समझते कि क्रूरता की ऐसी सीमा को विवाह-विच्छेद की डिग्री पाने के लिए याची द्वारा साबित किया जाना अपेक्षित है । क्रूरता विपक्षी पक्षकार को पीड़ित किए जाने के आशय से कारित कृत्य कहा जा सकता है । क्रोध की अस्थिरता, भाषा की अशिष्टता, क्रोध का आकस्मिक विस्फोट होना क्रूरता नहीं हो सकते है यद्यपि यह दुराचार हो सकती है ।"

19. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि समाज सामान्यतः विवाह बंधन को बनाए रखे जाने और विवाह से जन्में बच्चों की प्रसन्नता और उचित उन्नति और समाज, कुटुंब घर के संरक्षण की दृष्टि से वैवाहिक स्थिति को परिरक्षित रखे जाने में हितबद्ध होता है । विधान ने विवाह के विघटन करने के प्रयोजनार्थ प्राथमिक सिद्धांत से विचलन किया है और विधायिका उन आधारों को स्थापित करने के प्रयोजनार्थ अत्यंत चौकस है जिन पर विवाह का विघटन किया जा सकता है । वैवाहिक विधान का इतिहास यह दर्शाता है कि प्रारंभ में रूढ़िवादी दृष्टिकोणों ने उन आधारों को प्रभावित किया जिन पर पृथक्करण या विवाह-विच्छेद मंजूर किया जा सकता है । दशकों से, अधिक उदारवादी दृष्टिकोण को अपनाया जाता रहा है जो सीधे तौर पर अंतर्वलित वयस्क पक्षकारों की व्यक्तिगत खुशी की आवश्यकता द्वारा प्रोत्साहित हो किन्तु यद्यपि विवाह-विच्छेद के आधारों को उदार बनाया गया है, वे वैवाहिक बंधन को बनाए रखे जाने के पक्ष में अपवाद सृजित करते हैं । विधि की दृष्टि में, विवाह केवल विधि द्वारा मान्यताप्राप्त पद्धति द्वारा विघटित हो सकता है और किसी और पद्धित द्वारा नहीं ।

20. अधिनियम की योजना के अनुसार विवाह का विघटन साधारणतः अंतिम विकल्प होता है जिसका प्रयोग न्यायालय को करना होता है परन्तु जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जहां उन दोनों के लिए एक साथ लंबे समय तक रह पाना संभव या व्यावहारिक न हो, तो पति और पत्नी के रूप में एक साथ रहने के लिए निर्देश दिया जाना पूर्णतया अर्थहीन हो जाता है ।

21. 1976 के संशोधन अधिनियम के उद्देश्य और कारणों के कथन में उद्देश्य को विवाह-विच्छेद से संबंधित उपबंधों को उदार बनाए जाने का उद्देश्य अभिलिखित है और संशोधित उपबंध के अनुसार न्यायालयों को उन उपबंधों का निर्वचन और विश्लेषण करना होता है और उनको परिभाषित करना है कि कारकों को ध्यान में रखते हुए कौन सी बातें करना गठित करेगी जैसे कि पक्षकारों की सामाजिक हैसियत, उनकी शिक्षा, शारीरिक और मानसिक स्थितियां, रीतिरिवाज और परंपराएं और इन बातों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि दिए गए कृत्यों के आधार पर क्रूरता कारित हुई और किसी विनिर्दिष्ट मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इसकी कोई सटीक परिभाषा नहीं दी जा सकती जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि क्रूरता गठित हुई है ।

22. हमारे विचार में क्रूरता ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए जिससे न्यायालय के विवेक का समाधान होना चाहिए कि पक्षकारों के मध्य संबंध इस सीमा तक बिगड़ चुके हैं कि उनके लिए बिना किसी मानसिक पीड़ा, यातना या कष्ट के एक साथ रहना उनके लिए असंभव होगा और कारणवश वे विवाह-विच्छेद की डिक्री के हकदार हैं । मानसिक क्रूरता में मौखिक गालियां और गंदा दुर्व्यवहार और अपमानजक भाषा शामिल हो सकती है जिसके कारणवश दूसरे पक्षकार की मानसिक शांति में लगातार विघ्न उत्पन्न हो रहा हो ।

23. वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-पत्नी अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्री के आधार पर यह स्थापित करने की स्थिति है जो प्रत्यर्थी-पति द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया गया है जो मौखिक रूप से गालीगलौच करता था और भद्दा दुर्व्यवहार और अपमानजक भाषा का प्रयोग करने के द्वारा उसको अपमानित किया करता था जिसके कारण उसकी मानसिक शांति निरंतर रूप से व्यवधानपूर्ण रहती थी और वह उसके विरुद्ध एक दांडिक मामला फाइल करने की सीमा तक मजबूर हो गई जिसमें दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया जा चुका है । तत्समय, यह न्यायालय यह अभिलेख करता है कि जहां तक अपीलार्थी के साथ क्रूरता का बर्ताव किए जाने के संबंध में विवाद्यक संख्या 1 पर विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाले जाने का संबंध है, क्रूरता से किए जा रहे व्यवहार से है, किए गए प्रश्नों पर प्रत्यर्थी-पति द्वारा विवाद्यक संख्या 1 के संबंध में निकाले गए निष्कर्ष को चुनौती देते हुए कोई प्रति-आक्षेप फाइल नहीं किया गया है ।

24. निर्विवाद रूप से, यह याचिका अपीलार्थी-पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री ईप्सा करते हुए फाइल की है और वह अभिलेख के आधार पर यह साबित कर पाने में समर्थ रही है कि उसके साथ क्रूरता का बर्ताव किया जा रहा था जो 1955 के अधिनियम की धारा 13(1)(iक) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए एक आधार है और जिसको जिसे तारीख 27 मई, 1976 की अधिसूचना द्वारा 1976 के संशोधन अधिनियम पारित किए जाने के पश्चात् लागू किया गया है, इसलिए विद्वान् कुटुंब न्यायालय के लिए ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता है कि उसको (अपीलार्थी-पत्नी को) अभी भी विवाह-विच्छेद की डिक्री, जैसीकि उसके द्वारा प्रार्थना की गई, के बजाय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की जाए और इसके विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा उसको न्यायिक पृथक्करण जिसके लिए उसने कभी प्रार्थना नहीं की, प्रदान किए जाने के बाबत कोई न्यायोचित्य अभिलिखित नहीं किया गया है ।

25. वर्तमान प्रकीर्ण अपील सफल होती और एतद्द्वारा मंजूर की जाती है । अपीलार्थी ने अभिलेख पर उपलब्ध साबित तथ्यों के आधार पर अपने विवाह को विघटित किए जाने और विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर किए जाने के प्रयोजनार्थ अपने मामले को साबित कर पाने में सक्षम हो गई है । तद्नुसार, विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 6 मार्च, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री जिसके द्वारा उसको न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की गई थी, विवाह के विघटन की डिक्री में संपरिवर्तित किया जाता है और दोनों पक्षकारों के मध्य उनके तारीख 30 जनवरी, 2011 को हुए संपन्न विवाह को विघटित किया जाता है और अपीलार्थी को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान की जाती है जिसके लिए उसने प्रार्थना की थी ।

26. वर्तमान प्रकीर्ण अपील का निस्तारण तारीख 6 मार्च, 2017 के निर्णय और डिक्री में उपांतरण के साथ किया जाता है । लागत के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./अवि.

नवीन कुमार

बनाम

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय और अन्य

तारीख 15 जून, 2017

न्यायमूर्ति विवेक सिंह ठाकुर

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – परमादेश रिट-प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा परीक्षा का आयोजन – याची द्वारा परीक्षा में उपस्थित होना – याची के उत्तीर्ण होने के बावजूद उसे प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा अनुपस्थित दिखाया जाना – यह सुस्थापित है कि यदि छात्र परीक्षा में उपस्थित होकर अंक प्राप्त करके उत्तीर्ण हो जाता है तो उसे अनुपस्थित नहीं दिखाया जा सकता – इस दौरान तेरह वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाना और पाठ्यक्रम बदल जाना – याची को परीक्षा में दोबारा बैठने का अवसर दिया जाना और मानसिक पीड़ा, शारीरिक उत्पीड़न, यातना, वित्तीय हानि इत्यादि के लिए प्रतिकर का संदाय करने के लिए निर्देशित किया जाना युक्तिसंगत होगा ।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि याची ने प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय में वर्ष 2001 में एम.ए (अर्थशास्त्र) में प्रवेश लिया था । वह जून, 2004 में प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 1, 2, 3 और द्वितीय सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 4 और 6 में भी उपस्थित हुआ था जिसका परिणाम अक्तूबर, 2004 के अक्तूबर माह में घोषित हुआ था और याची को प्राप्त अंकों के बारे में अवगत कराया गया । याची ने इस याचिका द्वारा स्नातकोत्तर (अर्थशास्त्र) के विषय के संबंध में समेकित अंकतालिका जारी किए जाने और उसको मानसिक पीड़ा, शारीरिक उत्पीड़न, यातना, वित्तीय हानि और प्रगति (कैरियर) के दो बहुमूल्य वर्षों को क्षति और उसको विभिन्न परीक्षाओं और साक्षात्कारों में उपस्थित होने से तथा विभिन्न साक्षात्कारों में स्नातकोत्तर उपाधि का लाभ प्राप्त किए जाने से वंचित किए जाने के लिए 5 लाख रुपए के प्रतिकर का संदाय करने का निदेश देने के अनुतोष की प्रार्थना की है । उसको पाठ्यक्रम 6 में अनुपस्थित दर्शित किया गया । याची ने प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय में वर्ष 2001 में एम.ए (अर्थशास्त्र) में प्रवेश लिया । याची ने विश्वविद्यालय की परीक्षा और मूल्यांकन शाखाओं की

शरण ली और द्वितीय सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 6 में अपनी अनुपस्थिति दर्शाए जाने के लिए विरोध दर्ज कराया । उसकी शिकायत के प्रत्युत्तर में, द्वितीय सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 6 का उसका परिणाम निश्चित किया गया था और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा उस को परीक्षा नियंत्रक के माध्यम से तारीख 2 नवम्बर, 2004 के पत्र (उपाबंध पी 3) द्वारा सूचित कर दिया गया । तथापि, तारीख 2 नवम्बर, 2004 की इस संसूचना (उपाबंध पी 3) में याची को प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित दिखाया गया और उसको जून, 2004 में आयोजित प्रथम सेमेस्टर परीक्षा की परिणाम तालिका जमा करने की सलाह दी गई थी । तारीख 2 नवम्बर, 2004, उपाबंध पी 3 के पत्र के उत्तर में, याची ने परीक्षा नियंत्रक को तारीख 14 दिसम्बर, 2004 (उपाबंध पी 4) को पुनः एक आवेदन यह कहते हुए प्रस्तुत किया कि वह जून, 2004 में पाठ्यक्रम 3 और 6 में उपस्थित हो चुका था किन्तु पाठ्यक्रम 6 के परिणाम व्यवस्थित होने के पश्चात् उसको पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित दिखाया गया है । इस आवेदन में उसने अपने परिणाम को सही अंक दिए जाने के द्वारा ठीक किए जाने का अनुरोध किया है । केवल इसी अवधि के दौरान, प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय अधिकारियों द्वारा सत्यापित किया गया कि पाठ्यक्रम 3 और 6 की उपस्थित-शीट के अनुसार, याची दोनो प्रश्नपत्रों में उपस्थित हुआ था । तत्पश्चात्, याची को आश्वासन दिया था कि मामला अतिशीघ्र निपट जाएगा । याची के अनुसार तत्पश्चात् प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से संबंधित प्राधिकारियों और अधिकारियों से नियमित मिलने के बावजूद कोई संसूचना प्राप्त नहीं हुई । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने पश्चात्वर्ती पत्राचार के संबंध में अभिलेख पर कोई दस्तावेज, यदि कोई हो, भी प्रस्तुत नहीं किया । इस दौरान याची ने वर्ष 2005 में एम.ए. (अर्थशास्त्र) के शेष प्रश्नपत्र उत्तीर्ण कर लिए थे और तत्पश्चात् आवेदन, उपाबंध पी 5 प्रस्तुत करते हुए तारीख 30 अप्रैल, 2007 को समेकित अंकतालिका के लिए आवेदन किया । तथापि, इस आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा "सी 3 में पुनःउपस्थित हो" के साथ वापिस कर दिया गया और जिस पर याची ने तारीख 23 मई, 2007 के आवेदन (उपाबंध पी 6) द्वारा समेकित अंकतालिका जारी करने के लिए यह कहते हुए अनुरोध किया कि उसको जून, 2004 में 37 अंकों के साथ पाठ्यक्रम 3 के उत्तीर्ण करने के बावजूद, उक्त पाठ्यक्रम में अनुपस्थित दिखाया जा रहा है । आवेदन में यह भी अभिकथन किया है कि याची को साक्षात्कार में उपस्थित होना था । इस आवेदन को इस पृष्ठांकन

के साथ याची वापस भेज दिया था कि चूंकि याची पाठ्यक्रम 3 में पुनःउपस्थित हुआ था, इसलिए उसको समेकित अंक तालिका जारी नहीं की जा सकी थी और तारीख 2.11.2004 (उपाबंध पी 3) के पत्र का हवाला देते हुए जिसके द्वारा याची को अभिलिखित रूप से पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित कहा गया था और उसको पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण करने के लिए कहा गया था और उसमें यह भी अभिकथन किया गया था कि याची को पाठ्यक्रम 6 के अंक गलती से दिए गए थे जिस गलती को पश्चात् में सही किया गया था और उसको पाठ्यक्रम 6 में 37 अंक दिए गए थे । तत्पश्चात्, याची ने पुनः यह अभिकथन करते हुए एम.ए. (अर्थशास्त्र) की समेकित अंकतालिका जारी करने के लिए तारीख 23 जुलाई, 2007 (उपाबंध पी 7) को एक आवेदन प्रस्तुत किया कि वह दोनों पाठ्यक्रमों अर्थात् प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 3 और द्वितीय सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 6 में उपस्थित हुआ था परन्तु पूर्व में उसे इस तथ्य के बावजूद कि उसने पाठ्यक्रम 3 को 37 अंकों के साथ उत्तीर्ण कर लिया है, पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित दिखाया गया था । इस आवेदन में प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से अनुरोध किया गया था कि समेकित अंक तालिका यथाशीघ्र जारी की जाए चूंकि याची को गोदरेज कंपनी में रोजगार के लिए तारीख 1 अगस्त, 2007 को साक्षात्कार में उपस्थित होना था । याची ने प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से लगभग एक वर्ष की अवधि तक कोई जवाब प्राप्त न होने पर, वर्तमान रिट याचिका जुलाई, 2008 में फाइल की । न्यायालय द्वारा याचिका का तद्नुसार निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय द्वारा निर्णय अधिनिर्णीत करते हुए कि अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों से यह स्पष्ट होता है कि याची को इस याचिका में प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा उत्तर फाइल करने तक, कभी भी सूचना नहीं दी गई कि उसने पाठ्यक्रम 3 में 19 अंक प्राप्त किए हैं और उक्त पाठ्यक्रम में उसके सामने 37 अंक गलती के कारण सूचित किए गए थे, किन्तु विश्वविद्यालय का पक्षकथन था कि याची पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित था । याची ने तारीख 16 जुलाई, 2008 को रिट याचिका फाइल की है और याचिका की प्रति उसी दिन प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल को भी भेजी गई थी । तारीख 5 अगस्त, 2008 का पत्राचार (उपाबंध आर 1) बाद में किया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा याचिका की प्रति प्राप्त किए जाने के पश्चात्, क्षति नियंत्रण प्रबंधन किया गया था और तारीख 5 अगस्त, 2008 का पत्र (उपाबंध आर 1) तैयार

किया गया । इसमें उक्त तारीख से पूर्व कोई संसूचना अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है जिसमें विश्वविद्यालय ने जून, 2004 में आयोजित परीक्षा में उसके द्वारा पाठ्यक्रम 3 में 19 अंकों की प्राप्ति के बारे में सूचित किया था और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय यह पक्षकथन कि याची पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित था, याची यह साबित करने के लिए आतूर था कि वह जून, 2004 में पाठ्यक्रम 3 में उपस्थित हुआ और यह विश्वास करते हुए कि उसने पाठ्यक्रम 3 में 37 अंक प्राप्त किए थे, उसने अवसर का लाभ उठाने और विहित अवधि के दौरान उक्त प्रश्नपत्र को उत्तीर्ण करने के प्रयोजनार्थ उक्त पाठयक्रम में पुनः उपस्थित होने के लिए आवेदन नहीं किया । तारीख 5 अगस्त, 2007 का पत्र उपेक्षा का अन्य स्पष्ट उदाहरण और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय की अपेक्षा अधिकारियों के गैर जिम्मेदाराना/ उदासीन रवैये का अन्य स्पष्ट उदाहरण है जिसके लिए निश्चित रूप से प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को परिणाम भुगतना है । याची ने क्रमशः नवम्बर, 2004 और जून, 2005 में पाठ्यक्रम 1 और 2 उतीर्ण किए हैं और यह तथ्य, आवेदन प्रपत्र, उपाबंध पी 5 में उल्लिखित इस तथ्य का भी समर्थन प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा किया गया है चूंकि समेकित अंकतालिका को प्रदान किए जाने से मात्र इस आधार पर तारीख 30 अप्रैल, 2004 को इनकार किया गया कि वह पाठ्यक्रम 3 में पुनःउपस्थित हुआ था । परन्तु तारीख 5 अगस्त, 2007 के पत्र (उपाबंध आर 1) में याची को पाठ्यक्रम 1, 2 और 3 में पुनःउपस्थित होने के लिए निदेश दिया गया है । उस तथ्य के बावजूद कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा उपेक्षा करती है, इस कारणवश याची ने आज तक एम.ए. (अर्थशास्त्र) के पाठ्यक्रम 3 आज तक उत्तीर्ण नहीं किया है, एम.ए. (अर्थशास्त्र) की समेकित अंकतालिका जारी किए जाने का निदेश प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को नहीं दिया जा सकता । इन परिस्थितियों में, याची के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि याची ने भी अन्य अनुतोष प्रदान किए जाने के लिए भी प्रार्थना की है, जिसको न्याय हित और निष्पक्षता को ध्यान में रखते हुए उचित समझा गया और इस प्रकार उसने पुराने पाठ्यक्रम में एम.ए. (अर्थशास्त्र) के पाठ्यक्रम 3 में उपस्थित होने के लिए तीन अवसर प्रदान किए जाने हेतु प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को निर्देशित किए जाने की प्रार्थना की है चूंकि संबंधित विषय में अध्ययन में लंबे समय अंतराल के पश्चात् पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण करने में कठिनाई होगी । उसने उसके केरियर के मूल्यवान वर्ष बर्बाद किए जाने और मानिसक पीड़ा, यातना, उत्पीड़न कारित होने तथा मुकदमें में

घसीटे जाने के लिए भी प्रतिकर की युक्तिसंगत धनराशि अधिनिर्णीत किए जाने का अनुरोध किया है । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विश्वविद्यालय ने याची को पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण करने के लिए दो अवसर प्रदान किए जाने के विरुद्ध नहीं है किन्तु उन्होंने उस आधार पर याची को प्रतिकर प्रदान किए जाने का प्रबलता से विरोध किया कि याची ने स्वयं अपने पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने में उपेक्षा बरती थी और उसने 2004 के पश्चात् वर्ष, 2007 में विश्वविद्यालय को सम्पर्क किया था । उसके अनुसार, यदि याची ने वर्ष 2004 में सम्यक् रूप से तत्परता और सावधानी से कार्य किया होता तो उसका मामला उसी समय तुरंत हल हो गया होता । याची के उसके प्रथम सेमेस्टर के परिणाम पत्र को जमा करने के लिए कहा गया था और उसे चेतावनी दी गई थी कि उसके प्रथम सेमेस्टर के परिणाम पत्र को जमा न करने पर अगली परीक्षा के लिए उसकी अभ्यर्थिता रद्द की जा सकती है । याची ने तारीख 2 नवम्बर, 2004 (उपाबंध पी 3) के पत्र द्वारा सूचित किया गया कि उसको पाठ्यक्रम 6 का परिणाम तैयार हो गया है और उसको पाठ्यक्रम 3 में 37 अंक प्रदान किए गए हैं जो पहले उसको पाठ्यक्रम 6 में प्रदान किए गए थे पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित घोषित किया गया था । तुरन्त इसके तत्पश्चात् तारीख 14 दिसम्बर, 2004 को याची ने आवेदन उपाबंध पी 4 द्वारा, पाठ्यक्रम 3 में उसको अनुपस्थित दर्शाए जाने के विरुद्ध विरोध दर्ज कराया था और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से अपने मामले को हल करने और द्वितीय सेमेस्टर के परिणाम जारी करने के लिए कहा था । तत्पश्चात्, विश्वविद्यालय से न तो कोई उत्तर मिला और न ही याची की अभ्यर्थिता को रद्द किया गया । इसके विपरीत याची को प्रथम सेमेस्टर के क्रमशः पाठ्यक्रम 1 और पाठ्यक्रम 2 को उत्तीर्ण करने के लिए नवम्बर, 2004 और जून, 2005 में परीक्षाओं में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान कर दी गई । वह इस धारणा के अन्तर्गत था कि उसने पाठ्यक्रम 3 में 37 अंक प्राप्त किए हैं और उसको गलती से, जून, 2004 के दौरान उस प्रश्नपत्र में अनुपस्थित दिखाया गया था जैसाकि उसे आगे चलकर, प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा पाठ्यक्रम 6 में भी अनुपस्थित दिखाया गया है, जिसे गलत पाया गया और यह पाया गया है कि याची ने 37 अंक प्राप्त किए हैं । यह प्रथम बार केवल तब तक हुआ जब प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने तारीख 5 अगस्त, 2008 के पत्र (उपाबंध आर 1) द्वारा स्वीकार किया कि याची पाठ्यक्रम 3 में उपस्थित हो चुका है और इस बात का भी प्रकटीकरण किया गया कि

उसने उक्त पाठ्यक्रम में 19 अंक हासिल किए हैं । प्रत्यर्थी की ओर से विलंब और चूकों के बाबत किए गए अभिवाक् माने जाने योग्य नहीं है चूंकि तारीख 14 दिसम्बर, 2004 (उपाबंध पी 4) को आवेदन फाइल किए जाने के पश्चात्, जून, 2004 में आयोजित पाठ्यक्रम 3 की परीक्षा में अपनी उपस्थिति के बाबत प्रकथन करने वाले अभिवाक् का उत्तर प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा वर्तमान याचिका का उत्तर फाइल किए जाने तक नहीं दिया गया और याची पी पाठ्यक्रम 3 में 37 अंक दर्शित करने वाले परिणाम पत्र अभ्यर्पित करने के लिए जोर डाले बिना प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 1 और 2 को उत्तीर्ण करने के लिए अनुवर्ती परीक्षाओं में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान कर दी गई थी । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय का आचरण याची के दावे को स्वीकार करने वाला था और इसप्रकार, याची के लिए ऐसा अवसर नहीं था कि वह पुनः आवेदन प्रस्तुत करता या 2007 के पूर्व न्यायालय की शरण में जाता, जब समेकित अंकतालिका जारी किए जाने के लिए याची द्वारा फाइल किए गए फाइल किया गया आवदेन को पृष्ठांकन के साथ विश्वविद्यालय द्वारा वापस कर दिया गया कि वह पाठ्यक्रम 3 में पुनःउपस्थित हुआ था और तारीख 23 मई, 2007 को समेकित अंकतालिका को जारी करने के लिए आवेदन भी पुनः खारिज कर दिया गया । 2007 में भी, तारीख 23 जुलाई, 2007 के आवेदन उपाबंध पी 7 द्वारा याची ने जून, 2004 में पाठ्यक्रम 3 में उपस्थित होने और उसको उत्तीर्ण करने के लिए अपने दावे को दोहराया है परन्तु उक्त आवेदन का प्रत्यर्थी विश्विविद्यालय द्वारा कभी भी उत्तर नहीं दिया गया और याची को वर्तमान याचिका फाइल करने के लिए विवश होना पड़ा और यह केवल प्रथम बार हुआ है कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने उत्तर में अभिवाक् किया है कि याची पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित नहीं था किन्तु जून, 2004 में 19 अंक हासिल करके असफल रहा था । इन परिस्थितियों में, याची की ओर से न्यायालय या प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय की शरण में जाने में विलंब नहीं हुआ है । छात्रों के लिए परीक्षा का संचालन करना उसका परिणाम घोषित करना, अंकों को चढ़ाना, प्रमाणपत्र जारी करना और छात्रों की डिग्री प्रदान करना अत्यधिक संवेदनशील कार्य है जिसको प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा अत्यधिक सावधानी के साथ किया जाना होता है चूंकि इसमें न केवल छात्रों का कैरियर अंतर्वलित होता है बल्कि संबंधित विश्वविद्यालय पर छात्रों और समाज का विश्वास भी अंतर्वलित होता है । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह अपने

उत्तरदायित्व का निर्वाह अत्यधिक सावधानी के साथ करे जिससे कि परीक्षाओं की पुनीतता बनी रहे । यह सत्य है कि सम्यक् रूप से सावधानी और देखभाल के बावजूद इसमें गलती होने की सदैव संभावना बनी रहती है परन्तु ऐसी गलतियों का निराकरण भी मामले पर संवेदनशीलता के साथ विचार किए जाने के द्वारा युक्तिसंगत समय के भीतर किया जाना चाहिए ताकि छात्रों का कैरियर पर ऐसी गलतियों विपरीत प्रभाव न पड़े । वर्तमान मामला न केवल प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के पदधारियों/अधिकारियों के उदासीन व्यवहार का स्पष्ट उदाहरण है बल्कि उनके द्वारा असावधानीपूर्ण, गैरजिम्मेदाराना और उपेक्षापूर्वक व्यवहार का स्पष्ट उदारण है जिसके लिए निश्चित रूप से प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय दायी है । याची ने पाठ्यक्रम 3 उत्तीर्ण करने के लिए अवसर प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ विनिर्दिष्ट रूप से अनुरोध नहीं किया है और उसने ऐसा करके ठीक ही किया है क्योंकि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा याचिका में उत्तर फाइल करने तक उसको यह विश्वास था कि उसने 37 अंक हासिल करके पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण कर लिया है । यद्यपि याचिका के लंबित रहने के दौरान भी अनुतोष खंड के संशोधन के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया है, फिर भी न्यायालय को किसी भी मामले में सदैव अनुतोष फेरफार करने की शक्ति होती है । याची ने अन्य किसी अनुतोष के लिए भी अनुरोध किया है जिसमें न्याय के हित में उसके पक्ष में प्रदान किया जाना उचित पाया जाता है । इसलिए, मामले के विलक्षण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें विश्वविद्यालय को निर्देशित किया जाए कि वे याची को एम.ए. (अर्थशास्त्र) के पाठ्यक्रम 3 की परीक्षा में सम्मलित होने के द्वारा उसे उसकी मास्टर डिग्री पूरी करने के लिए याची को अवसर प्रदान करने के लिए अवसर प्रदान करेंगे । इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अब पाठ्यक्रम बदल गया है और याची के लिए आसान नहीं होगा कि वह परीक्षा के लिए तैयार हो सके और वह एक ही अवसर का प्रयोग करते हुए पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण कर सके, अतः प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को निर्देशित किया जाता है कि वे याची को पुराने पाठ्यक्रम जिसमें वह एम.ए. (अर्थशास्त्र) का अपना अध्ययन कर रहा था, में पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण करने के लिए याची को तैयारी के लिए युक्तिसंगत समय प्रदान करते हुए न्यूनतम तीन अवसर प्रदान करें । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय याची से निर्णय की प्रति प्राप्त होने या याची द्वारा उसको प्रस्तुत किए जाने, जो भी हो, के तुरंत पश्चात् लेने के लिए कार्य आरंभ

करेगा, जैसा कि इसमें ऊपर निर्देशित किया गया है और जिसे याची को संसूचित करेगा । उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मेरा यह मत है कि याची प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से भविष्य में स्मरण रखे जाने योग्य धनराशि को प्रतिकर के रूप में पाने का हकदार है । तथापि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम 3 उत्तीर्ण करने के लिए याची को अवसर देने के लिए सहमत हो गया है, विश्वविद्यालय को यह निर्देश दिया जाना युक्तिसंगत होगा कि वे याची को 40,000/- रुपए का संदाय करें । (पैरा 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2014] 2014 (अनुपूरक) हिमाचल एल.आर. (डी.बी.) 2422 : **सतीजा राजेश एन.** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** । 10

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2009 की सिविल रिट याचिका सं. 3393.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री राजीव राय

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री जे.एल. भारद्वाज

न्यायमूर्ति विवेक सिंह ठाकुर – याची ने इस याचिका द्वारा स्नातकोत्तर (अर्थशास्त्र) के विषय के संबंध में समेकित अंकतालिका जारी किए जाने और उसको मानसिक पीड़ा, शारीरिक उत्पीड़न, यातना, वित्तीय हानि और प्रगति (कैरियर) के दो बहुमूल्य वर्षों को क्षति और उसको विभिन्न परीक्षाओं और साक्षात्कारों में उपस्थित होने से तथा विभिन्न साक्षात्कारों में स्नातकोत्तर उपाधि का लाभ प्राप्त किए जाने से वंचित किए जाने के लिए 5 लाख रुपए के प्रतिकर का संदाय करने का निदेश देने के अनुतोष की प्रार्थना की है ।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि याची ने प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय में वर्ष 2001 में एम.ए. (अर्थशास्त्र) में प्रवेश लिया था । वह जून, 2004 में प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 1,2,3 और द्वितीय सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 4 और 6 में भी उपस्थित हुआ था जिसका परिणाम अक्तूबर,

2004 के अक्तूबर माह में घोषित हुआ था और याची को प्राप्त अंकों के बारे में अवगत कराया गया जो इस प्रकार है :–

एम.ए. द्वितीय सेमेस्टर (जून, 2004)

पाठ्यक्रम	प्राप्त किए गए अंक
1	16
2	21
3	37

एम.ए. प्रथम सेमेस्टर (जून, 2004)

पाठ्यक्रम	प्राप्त किए गए अंक
4	33
6	अनुपस्थित

3. याची ने विश्वविद्यालय की परीक्षा और मूल्यांकन शाखाओं की शरण ली और द्वितीय सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 6 में अपनी अनुपस्थिति दर्शाए जाने के लिए विरोध दर्ज कराया । उसकी शिकायत के प्रत्युत्तर में, द्वितीय सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 6 का उसका परिणाम निश्चित किया गया था और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा उसको परीक्षा नियंत्रक के माध्यम से तारीख 2 नवम्बर, 2004 के पत्र (उपाबंध पी 3) द्वारा सूचित कर दिया गया । तथापि, तारीख 2 नवम्बर, 2004 की इस संसूचना (उपाबंध पी 3) में याची को प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित दिखाया गया और उसको जून, 2004 में आयोजित प्रथम सेमेस्टर परीक्षा की परिणाम तालिका जमा करने की सलाह दी गई थी ।

4. तारीख 2 नवम्बर, 2004, उपाबंध पी 3 के पत्र के उत्तर में, याची ने परीक्षा नियंत्रक को तारीख 14 दिसम्बर, 2004 (उपाबंध पी 4) को पुनः एक आवेदन यह कहते हुए प्रस्तुत किया कि वह जून, 2004 में पाठ्यक्रम 3 और 6 में उपस्थित हो चुका था किन्तु पाठ्यक्रम 6 के परिणाम व्यवस्थित होने के पश्चात् उसको पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित दिखाया गया है । इस आवेदन में उसने अपने परिणाम को सही अंक दिए जाने के द्वारा ठीक किए जाने का अनुरोध किया है । केवल इसी अवधि के दौरान, प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय अधिकारियों द्वारा सत्यापित किया गया कि पाठ्यक्रम 3 और 6 की उपस्थित-शीट के अनुसार, याची दोनों प्रश्नपत्रों में उपस्थित हुआ था । तत्पश्चात्, याची को आश्वासन दिया था कि मामला

अतिशीघ्र निपट जाएगा । याची के अनुसार तत्पश्चात् प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से संबंधित प्राधिकारियों और अधिकारियों से नियमित मिलने के बावजूद कोई संसूचना प्राप्त नहीं हुई । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने पश्चात्वर्ती पत्राचार के संबंध में अभिलेख पर कोई दस्तावेज, यदि कोई हो, भी प्रस्तुत नहीं किया ।

5. इस दौरान याची ने वर्ष 2005 में एम.ए. (अर्थशास्त्र) के शेष प्रश्नपत्र उत्तीर्ण कर लिए थे और तत्पश्चात् आवेदन, उपाबंध पी 5 प्रस्तुत करते हुए तारीख 30 अप्रैल, 2007 को समेकित अंकतालिका के लिए आवेदन किया । तथापि, इस आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा "सी 3 में पुनःउपस्थित हो" के साथ वापिस कर दिया गया और जिस पर याची ने तारीख 23 मई, 2007 के आवेदन (उपाबंध पी 6) द्वारा समेकित अंकतालिका जारी करने के लिए यह कहते हुए अनुरोध किया कि उसको जून, 2004 में 37 अंकों के साथ पाठ्यक्रम 3 के उत्तीर्ण करने के बावजूद, उक्त पाठ्यक्रम में अनुपस्थित दिखाया जा रहा है । आवेदन में यह भी अभिकथन किया है कि याची को साक्षात्कार में उपस्थित होना था । इस आवेदन को इस पृष्ठांकन के साथ याची वापस भेज दिया था कि चूंकि याची पाठ्यक्रम 3 में पुनःउपस्थित हुआ था, इसलिए उसको समेकित अंकतालिका जारी नहीं की जा सकी थी और तारीख 2 नवम्बर, 2004 (उपाबंध पी 3) के पत्र का हवाला देते हुए जिसके द्वारा याची को अभिलिखित रूप से पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित कहा गया था और उसको पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण करने के लिए कहा गया था और उसमें यह भी अभिकथन किया गया था कि याची को पाठ्यक्रम 6 के अंक गलती से दिए गए थे जिस गलती को पश्चात् में सही किया गया था और उसको पाठ्यक्रम 6 में 37 अंक दिए गए थे ।

6. तत्पश्चात्, याची ने पुनः यह अभिकथन करते हुए एम.ए. (अर्थशास्त्र) की समेकित अंकतालिका जारी करने के लिए तारीख 23 जुलाई, 2007 (उपाबंध पी-7) को एक आवेदन प्रस्तुत किया कि वह दोनों पाठ्यक्रमों अर्थात् प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 3 और द्वितीय सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 6 में उपस्थित हुआ था परन्तु पूर्व में उसे इस तथ्य के बावजूद कि उसने पाठ्यक्रम 3 को 37 अंकों के साथ उत्तीर्ण कर लिया है, पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित दिखाया गया था । इस आवेदन में प्रत्यर्थी ने विश्वविद्यालय से अनुरोध किया गया था कि समेकित अंकतालिका यथाशीघ्र जारी की जाए चूंकि याची को गोदरेज कंपनी में रोजगार के लिए

तारीख 1 अगस्त, 2007 को साक्षात्कार में उपस्थित होना था ।

7. याची ने प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से लगभग एक वर्ष की अवधि तक कोई जवाब प्राप्त न होने पर, वर्तमान रिट याचिका जुलाई, 2008 में फाइल की । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने तारीख 5 अगस्त, 2008 के पत्र (उपाबंध आर 1) को संलग्न करते हुए तारीख 18 अगस्त, 2008 को उत्तर यह अभिकथन करते हुए फाइल किया कि याची ने तारीख 30 जुलाई, 2008 को मूल्यांकन शाखा से प्राप्त जानकारी के अनुसार, प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 3 में 19 अंक प्राप्त किए थे और जून, 2004 में प्रथम सेमेस्टर की परीक्षा का परिणाम निम्नलिखित है :–

पाठ्यक्रम	प्राप्त किए गए अंक
1	16
2	21
3	19

इस पत्र (उपांबंध आर-1) में यह अभिकथन भी किया गया है कि याची से सभी पाठ्यक्रमों में पुनः उपस्थित होने की अपेक्षा की गई है ।

8. उत्तर में, यह अभिकथन किया है कि अभिलेख से यह प्रकट होता है कि याची ने जून, 2004 में आयोजित प्रथम सेमेस्टर परीक्षा की एम.ए. (अर्थशास्त्र) के पाठ्यक्रम में 19 अंक प्राप्त किए थे और याची को उक्त परिणाम के संबंध में तारीख 5 अगस्त, 2008 के पत्र (उपाबंध आर 1) द्वारा सूचित किया गया था और इस कारण से याची को समेकित अंक-तालिका जारी नहीं की जा सकी । विश्वविद्यालय ने जून, 2004 में आयोजित परीक्षा के संबंध में एम.ए. (अर्थशास्त्र) के पाठ्यक्रम 6 से संबंधित अधिनिर्णय सूची (उपाबंध आर 2 और आर 3) की प्रतियां भी अभिलेख पर प्रस्तुत की हैं । विश्वविद्यालय के अनुसार, पाठ्यक्रम 6 (उपाबंध आर 2) के लिए अधिनिर्णय सूची को विश्वविद्यालय की परीक्षा शाखा द्वारा पाठ्यक्रम 3 की अधिनिर्णय सूची के रूप गलत पढ़ा गया और इसलिए, पाठ्यक्रम 6 में अधिनिर्णीत अंक प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 3 के सामने उल्लिखित कर दिए गए और इसलिए अभ्यर्थी को विश्वविद्यालय की परीक्षा शाखा द्वारा पाठ्यक्रम में अनुपस्थित दर्शित किया गया । उत्तर में, परिणाम तैयार किए जाने की प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया गया है । यह अभिकथन किया है कि जून में आयोजित परीक्षा के लिए, सामान्य तौर पर

उपस्थित-शीट उक्त वर्ष के सितम्बर/अक्तूबर माह में परीक्षा शाखा द्वारा प्राप्त की गई है और परीक्षा का परिणाम अक्तूबर के द्वितीय सप्ताह में घोषित हुआ है और तत्पश्चात् परीक्षा शाखा तालिका चार्ट पर परिणाम तैयार करती है, तालिका चार्ट की तैयारी के पश्चात् उसकी परीक्षा शाखा के दो व्यक्तियों द्वारा जांच की जाती है और तत्पश्चात् तालिका चार्टों में की गई प्रविष्टियां संबंधित छात्र/अभ्यर्थी की वैयक्तिक इतिवृत्त में चढ़ाई जाती हैं और वर्तमान मामले में, परीक्षा शाखा ने गलत पढ़े जाने के कारण पाठ्यक्रम 3 के सामने पाठ्यक्रम 6 के अधिनिर्णय को चढ़ा दिया और चूंकि परीक्षा शाखा ने पाठ्यक्रम 6 के संबंध में मूल्यांकन शाखा से कोई अधिनिर्णय प्राप्त नहीं किया था, याची को पाठ्यक्रम 6 में अनुपस्थित दिखा दिया गया । इससे इनकार किया जाता है कि याची ने वर्ष 2005 में एम.ए. (अर्थशास्त्र) परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी चूंकि याची पाठ्यक्रम 3 में पुनःउपस्थित हुआ है और इस कारणवश उसको समेकित अंकतालिका जारी नहीं की जा सकी ।

9. याची की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि पक्षकारों के अभिवचन और अभिलेख पर प्रस्तुत किए दस्तावेजों के आधार पर न केवल प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा उपेक्षा किया जाना दर्शित होता है, बल्कि विश्वविद्यालय और उसके अधिकारियों का छात्रों को प्रगति पर विपरीत प्रभाव डालने वाले मामलों को निपटाने में असावधानीपूर्ण और उदासीन व्यवहार दर्शित होता है और इसलिए, उसने यह दलील दी है कि याची प्रतिकर पाने का हकदार है, जैसा कि प्रार्थना याचिका में की गई है ।

10. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि याचिका कारित विलंब और चूकों के कारण असफल होनी चाहिए, चूंकि याची ने वर्ष 2004 में आयोजित परीक्षा के अपने परिणाम का निपटारा किए जाने के लिए तीन वर्ष पश्चात् विश्वविद्यालय की शरण ली है और उसने हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय अध्यादेश का हैंडबुक जिल्द-1 के अध्याय 6 में समाविष्ट खंड 6.72 और 6.73 का हवाला दिया जिसमें यह उपबंधित किया है कि विश्वविद्यालय के अभ्यर्थी का परिणाम घोषित करने में हुई अपनी गलती का संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है और यह दलील दी कि विश्वविद्यालय को उन अंकों को निरस्त करने की शक्ति प्राप्त है जिनको याची द्वारा जून, 2004 में आयोजित पाठ्यक्रम 3 की परीक्षा गलत ढंग से प्राप्त किया जाना दर्शाया गया है, चूंकि सत्यापन पर, यह पाया गया कि याची ने उक्त पाठ्यक्रम 6 में 19 अंक प्राप्त किए थे

और वस्तुतः याची ने पाठ्यक्रम 6 में 37 अंक हासिल किए थे जो गलती से पाठ्यक्रम 3 में दर्शित किए थे । **सतीजा राजेश एन.** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए उसने विलंब और चूकें कारित किए जाने के आधार पर वर्तमान याचिका को खारिज किए जाने की प्रार्थना की है ।

11. अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों से यह स्पष्ट होता है कि याची को इस याचिका में प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा उत्तर फाइल करने तक, कभी भी सूचना नहीं दी गई कि उसने पाठ्यक्रम 3 में 19 अंक प्राप्त किए हैं और उक्त पाठ्यक्रम में उसको सामने 37 अंक गलती के कारण सूचित किए गए थे, किन्तु विश्वविद्यालय का पक्षकथन था कि याची पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित था । याची ने तारीख 16 जुलाई, 2008 को रिट याचिका फाइल की है और याचिका की प्रति उसी दिन प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल को भी भेजी गई थी । तारीख 5 अगस्त, 2008 का पत्राचार (उपाबंध आर 1) बाद में किया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा याचिका की प्रति प्राप्त किए जाने के पश्चात्, क्षति नियंत्रण प्रबंधन किया गया था और तारीख 5 अगस्त, 2008 का पत्र (उपाबंध आर 1) तैयार किया गया । इसमें उक्त तारीख से पूर्व कोई संसूचना अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है जिसमें विश्वविद्यालय ने जून, 2004 में आयोजित परीक्षा में उसके द्वारा पाठ्यक्रम 3 में 19 अंकों की प्राप्ति के बारे में सूचित किया था और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय यह पक्षकथन कि याची पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित था, याची यह साबित करने के लिए आतूर था कि वह जून, 2004 में पाठ्यक्रम 3 में उपस्थित हुआ और यह विश्वास करते हुए कि उसने पाठ्यक्रम 3 में 37 अंक प्राप्त किए थे, उसने अवसर का लाभ उठाने और विहित अवधि के दौरान उक्त प्रश्नपत्र को उत्तीर्ण करने के प्रयोजनार्थ उक्त पाठयक्रम में पुनः उपस्थित होने के लिए आवेदन नहीं किया । तारीख 5 अगस्त, 2007 का पत्र उपेक्षा का अन्य स्पष्ट उदाहरण और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय की अपेक्षा अधिकारियों का गैर जिम्मेदाराना/उदासीन रवैये का अन्य स्पष्ट उदाहरण है जिसके लिए निश्चित रूप से प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को परिणाम भुगतना है । याची ने क्रमशः नवम्बर, 2004 और जून, 2005 में पाठ्यक्रम 1 और 2 उतीर्ण किए हैं और यह तथ्य, आवेदन प्रपत्र, उपाबंध पी 5 में उल्लिखित इस तथ्य का भी समर्थन प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा किया गया है चूंकि समेकित

[1] 2014 (अनुपूरक) हिमाचल एल. आर. (डी.बी.) 2422.

अंकतालिका को प्रदान किए जाने से मात्र इस आधार पर तारीख 30 अप्रैल, 2004 को इनकार किया गया कि वह पाठ्यक्रम 3 में पुनःउपस्थित हुआ था । परन्तु तारीख 5 अगस्त, 2007 के पत्र (उपाबंध आर 1) में याची को पाठ्यक्रम 1, 2 और 3 में पुनःउपस्थित होने के लिए निदेश दिया गया है । उस तथ्य के बावजूद कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा उपेक्षा करती है, इस कारणवश याची ने आज तक एम.ए. (अर्थशास्त्र) के पाठ्यक्रम 3 आज तक उत्तीर्ण नहीं किया है, एम.ए. (अर्थशास्त्र) की समेकित अंकतालिका जारी किए जाने का निदेश प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को नहीं दिया जा सकता ।

12. इन परिस्थितियों में, याची के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि याची ने भी अन्य अनुतोष प्रदान किए जाने के लिए भी प्रार्थना की है, जिसको न्याय हित और निष्पक्षता को ध्यान में रखते हुए उचित समझा गया और इस प्रकार उसने पुराने पाठ्यक्रम में एम.ए. (अर्थशास्त्र) के पाठ्यक्रम 3 में उपस्थित होने के लिए तीन अवसर प्रदान किए जाने हेतु प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को निर्देशित किए जाने की प्रार्थना की है चूंकि संबंधित विषय में अध्ययन में लंबे समय अंतराल के पश्चात् पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण करने में कठिनाई होगी । उसने उसके कैरियर के मूल्यवान वर्ष बर्बाद किए जाने और मानसिक पीड़ा, यातना, उत्पीड़न कारित होने तथा मुकदमे में घसीटे जाने के लिए भी प्रतिकर की युक्तिसंगत धनराशि अधिनिर्णीत किए जाने का अनुरोध किया है । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विश्वविद्यालय ने याची को पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण करने के लिए दो अवसर प्रदान किए जाने के विरुद्ध नहीं है किन्तु उन्होंने उस आधार पर याची को प्रतिकर प्रदान किए जाने का प्रबलता से विरोध किया कि याची ने स्वयं अपने पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने में उपेक्षा बरती थी और उसने 2004 के पश्चात् वर्ष, 2007 में विश्वविद्यालय को सम्पर्क किया था । उसके अनुसार, यदि याची ने वर्ष 2004 में सम्यक् रूप से तत्परता और सावधानी से कार्य किया होता तो उसका मामला उसी समय तुरंत हल हो गया होता ।

13. याची के उसके प्रथम सेमेस्टर के परिणाम पत्र को जमा करने के लिए कहा गया था और उसे चेतावनी दी गई थी कि उसके प्रथम सेमेस्टर के परिणाम पत्र को जमा न करने पर अगली परीक्षा के लिए उसकी अभ्यर्थिता रद्द की जा सकती है । याची ने तारीख 2 नवम्बर, 2004 (उपाबंध पी 3) के पत्र द्वारा सूचित किया गया कि उसको पाठ्यक्रम 6 का परिणाम तैयार हो गया है और उसको पाठ्यक्रम 3 में 37 अंक प्रदान किए

गए हैं जो पहले उसको पाठ्यक्रम 6 में प्रदान किए गए थे पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित घोषित किया गया था । तुरन्त इसके तत्पश्चात् तारीख 14 दिसम्बर, 2004 को याची ने आवेदन उपाबंध पी 4 द्वारा, पाठ्यक्रम 3 में उसको अनुपस्थित दर्शाए जाने के विरुद्ध विरोध दर्ज कराया था और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से अपने मामले को हल करने और द्वितीय समेस्टर के परिणाम जारी करने के लिए कहा था । तत्पश्चात्, विश्वविद्यालय से न तो कोई उत्तर मिला और न ही याची की अभ्यर्थिता को रद्द किया गया । इसके विपरीत याची को प्रथम सेमेस्टर के क्रमशः पाठ्यक्रम 1 और पाठ्यक्रम 2 को उत्तीर्ण करने के लिए नवम्बर, 2004 और जून, 2005 में परीक्षाओं में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान कर दी गई । वह इस धारणा के अन्तर्गत था कि उसने पाठ्यक्रम 3 में 37 अंक प्राप्त किए हैं और उसको गलती से, जून, 2004 के दौरान उस प्रश्नपत्र में अनुपस्थित दिखाया गया था जैसाकि उसे आगे चलकर, प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा पाठ्यक्रम 6 में भी अनुपस्थित दिखाया गया है, जिसे गलत पाया गया और यह पाया गया है कि याची ने 37 अंक प्राप्त किए हैं । यह प्रथम बार केवल तब तक हुआ जब प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने तारीख 5 अगस्त, 2008 के पत्र (उपाबंध आर 1) द्वारा स्वीकार किया कि याची पाठ्यक्रम 3 में उपस्थित हो चुका है और इस बात का भी प्रकटीकरण किया गया कि उसने उक्त पाठ्यक्रम में 19 अंक हासिल किए हैं ।

14. प्रत्यर्थी की ओर से विलंब और चूकों के बाबत किए गए अभिवाक् माने जाने योग्य नहीं है चूंकि तारीख 14 दिसम्बर, 2004 (उपाबंध पी 4) को आवेदन फाइल किए जाने के पश्चात्, जून, 2004 में आयोजित पाठ्यक्रम 3 की परीक्षा में अपनी उपस्थिति के बाबत प्रकथन करने वाले अभिवाक् का उत्तर प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा वर्तमान याचिका का उत्तर फाइल किए जाने तक नहीं दिया गया और याची पी पाठ्यक्रम 3 में 37 अंक दर्शित करने वाले परिणाम पत्र अभ्यर्पित करने के लिए जोर डाले बिना प्रथम सेमेस्टर के पाठ्यक्रम 1 और 2 को उत्तीर्ण करने के लिए अनुवर्ती परीक्षाओं में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान कर दी गई थी । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय का आचरण याची के दावे को स्वीकार करने वाला था और इस प्रकार, याची के लिए ऐसा अवसर नहीं था कि वह पुनः आवेदन प्रस्तुत करता या 2007 के पूर्व न्यायालय की शरण में जाता, जब समेकित अंकतालिका जारी किए जाने के लिए याची द्वारा फाइल किया गया आवदेन को पृष्ठांकन के साथ विश्वविद्यालय द्वारा वापस कर दिया

गया कि वह पाठ्यक्रम 3 में पुनःउपस्थित हुआ था और तारीख 23 मई, 2007 को समेकित अंकतालिका को जारी करने के लिए आवेदन भी पुनः खारिज कर दिया गया । 2007 में भी, तारीख 23 जुलाई, 2007 के आवेदन उपाबंध पी 7 द्वारा याची ने जून, 2004 में पाठ्यक्रम 3 में उपस्थित होने और उसको उत्तीर्ण करने के लिए अपने दावे को दोहराया है परन्तु उक्त आवेदन का प्रत्यर्थी विश्विविद्यालय द्वारा कभी भी उत्तर नहीं दिया गया और याची को वर्तमान याचिका फाइल करने के लिए विवश होना पड़ा और यह केवल प्रथम बार हुआ है कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने उत्तर में अभिवाक् किया है कि याची पाठ्यक्रम 3 में अनुपस्थित नहीं था किन्तु जून, 2004 में 19 अंक हासिल करके असफल रहा था । इन परिस्थितियों में, याची की ओर से न्यायालय या प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय की शरण में जाने में विलंब नहीं हुआ है ।

15. छात्रों के लिए परीक्षा का संचालन करना उसका परिणाम घोषित करना, अंकों को चढ़ाना, प्रमाणपत्र जारी करना और छात्रों की डिग्री प्रदान करना अत्यधिक संवेदनशील कार्य है जिसको प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा अत्यधिक सावधानी के साथ किया जाना होता है चूंकि इसमें न केवल छात्रों का कैरियर अंतर्वलित होता है बल्कि संबंधित विश्वविद्यालय पर छात्रों और समाज का विश्वास भी अंतर्वलित होता है । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह अत्यधिक सावधानी के साथ करे जिससे कि परीक्षाओं की पुनीतता बनी रहे । यह सत्य है कि सम्यक् रूप् से सावधानी और देखभाल के बावजूद इसमें गलती होने की सदैव संभावना बनी रहती है परन्तु ऐसी गलतियों का निराकरण भी मामले पर संवेदनशीलता के साथ विचार किए जाने के द्वारा युक्तिसंगत समय के भीतर किया जाना चाहिए ताकि छात्रों का कैरियर पर ऐसी गलतियों का विपरीत प्रभाव न पड़े । वर्तमान मामला न केवल प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के पदधारियों/अधिकारियों के उदासीन व्यवहार का स्पष्ट उदाहरण है बल्कि उनके द्वारा असावधानीपूर्ण, गैरजिम्मेदाराना और उपेक्षापूर्वक व्यवहार का स्पष्ट उदाहरण है जिसके लिए निश्चित रूप से प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय दायी है ।

16. याची ने पाठ्यक्रम 3 उत्तीर्ण करने के लिए अवसर प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ विनिर्दिष्ट रूप से अनुरोध नहीं किया है और उसने ऐसा करके ठीक ही किया है क्योंकि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा याचिका में उत्तर फाइल करने तक उसको यह विश्वास था कि उसने 37 अंक हासिल

करके पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण कर लिया है । यद्यपि याचिका के लंबित रहने के दौरान भी अनुतोष खंड के संशोधन के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया है, फिर भी न्यायालय को किसी भी मामले में सदैव अनुतोष फेरफार करने की शक्ति होती है । याची ने अन्य किसी अनुतोष के लिए भी अनुरोध किया है जिसमें न्याय के हित में उसके पक्ष में प्रदान किया जाना उचित पाया जाता है । इसलिए, मामले के विलक्षण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें विश्वविद्यालय को निर्देशित किया जाए कि वे याची को एम.ए. (अर्थशास्त्र) के पाठ्यक्रम 3 की परीक्षा में सम्मलित होने के द्वारा उसे उसकी मास्टर डिग्री पूरी करने के लिए याची को अवसर प्रदान करने के लिए अवसर प्रदान करेंगे ।

17. इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अब पाठ्यक्रम बदल गया है और याची के लिए आसान नहीं होगा कि वह परीक्षा के लिए तैयार हो सके और वह एक ही अवसर का प्रयोग करते हुए पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण कर सके, अतः प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को निर्देशित किया जाता है कि वे याची को पुराने पाठ्यक्रम जिसमें वह एम.ए. (अर्थशास्त्र) का अपना अध्ययन कर रहा था, में पाठ्यक्रम 3 को उत्तीर्ण करने के लिए याची को तैयारी के लिए युक्तिसंगत समय प्रदान करते हुए न्यूनतम तीन अवसर प्रदान करें । प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय याची से निर्णय की प्रति प्राप्त होने या याची द्वारा उसको प्रस्तुत किए जाने, जो भी हो, के तुरंत पश्चात् लेने के लिए कार्य आरंभ करेगा, जैसा कि इसमें ऊपर निर्देशित किया गया है और जिसे याची को संसूचित करेगा ।

18. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मेरा यह मत है कि याची प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से भविष्य में स्मरण रखे जाने योग्य धनराशि को प्रतिकर के रूप में पाने का हकदार है । तथापि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम 3 उत्तीर्ण करने के लिए याची को अवसर देने के लिए सहमत हो गया है, विश्वविद्यालय को यह निर्देश दिया जाना युक्तिसंगत होगा कि वे याची को 40,000/- रुपए का संदाय करें । पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, याचिका का निपटारा किया जाता है ।

याचिका का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

मही./अवि.

रीना देवी (श्रीमती)

बनाम

प्रमोद कुमार

तारीख 23 नवंबर, 2017

न्यायमूर्ति सुरेशवर ठाकुर

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 15 और 28 – विवाह-विच्छेद डिक्री – मंजूरी – पति द्वारा अपील के लिए उपबंधित परिसीमा अवधि के अवसान से पूर्व पुनः विवाह किया जाना – यद्यपि पति का ऐसा आचरण उचित नहीं है तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि को दृष्टिगत करते हुए पति से पूर्व पत्नी को प्रतिकर दिलाया जा सकता है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी का विवाह अपीलार्थी के साथ हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार तारीख 12 नवंबर, 2011 को संपन्न हुआ था । दोनों के विवाह से कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई । प्रत्यर्थी जे. बी. टी. अध्यापक के रूप में कार्य कर रही है और सरकारी प्राथमिक विद्यालय, बाथरी में तैनात है, जबकि अर्जीदार बी. ई. ओ., बानीखेत के कार्यालय में वरिष्ठ सहायक के रूप में कार्य कर रहा है । उनके विवाह के पश्चात् लगभग एक मास तक उनके संबंध ठीक रहे और इसके पश्चात् प्रत्यर्थी का अर्जीदार और उसके कुटुंब के प्रति व्यवहार परिवर्तित हो गया । वह घर के कार्यों को करने से कतराने लगी । उसने विवाह के एक मास के पश्चात् ग्राम सांगरेन में अपने माता-पिता के मकान में रहना आरंभ कर दिया । जब 2012 के मई मास में उसका सरकारी प्राथमिक विद्यालय, बाथरी से स्थानांतरण हो गया तो उनके संबंध और ज्यादा खराब हो गए क्योंकि प्रत्यर्थी अपने स्थानांतरण के लिए अर्जीदार को जिम्मेदार ठहराने लगी । स्थानांतण के पश्चात् भी वह सतत् रूप से अपने माता-पिता के साथ रहती रही और वह बलेरा से बाथरी तथा बाथरी से बलेरा के लिए आती जाती रही । अर्जीदार उसे अपने घर पर लाने के लिए अनेकों बार प्रत्यर्थी के माता-पिता के मकान पर गया और प्रत्यर्थी लगभग 10 दिनों तक उसके मकान पर रही और उसके पश्चात् जून, 2012 के अंत में किसी कारण (वजह) के बिना उसका मकान छोड़ कर चली गई ।

जुलाई, 2012 में अर्जीदार, उसकी माता और अन्य नातेदारों ने सुलह कराने के लिए हर संभव प्रयत्न किया और प्रत्यर्थी को अपनी ससुराल चलने के लिए कहा किन्तु उसने इनकार कर दिया । इसके पश्चात् तारीख 25 नवंबर, 2012 को उसकी माता, चाचा ओम प्रकाश, बहनोई अश्विनी कुमार, सुशील कुमार, विश्वनाथ और विक्की कुमार प्रत्यर्थी को वापस लाने के लिए पुनः उसके मकान पर गए किन्तु प्रत्यर्थी ने अपने माता-पिता के दबाव में अर्जीदार के साथ रहने से इनकार कर दिया । प्रत्यर्थी ने पर्याप्त या उचित कारण के बिना और वैवाहिक नातेदारी समाप्त करने की दृष्टि से अर्जीदार के साथ रहना छोड़ दिया और उसका परित्याग कर दिया तथा किसी उचित कारण के बिना वैवाहिक दायित्वों से उसे वंचित कर दिया । अर्जीदार ने यह भी कथन किया है कि प्रत्यर्थी अपने साथ अपने सभी आभूषण और अन्य कीमती चीजें भी ले गई थी । वर्तमान अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, चम्बा द्वारा 2014 की एच. एम. ए. अर्जी सं. 98 में तारीख 30 जून, 2016 को अभिलिखित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश ने हमारे समक्ष की अपीलार्थी और हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी के बीच वैवाहिक बंधन को विघटित किया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह अधिदेशाधीन है कि (i) किसी पक्षकार का जिसके हक में हिन्दू विवाह अर्जी पर एक सकारात्मक निर्णय सुनाया गया है, उपर्युक्त दोषपूर्ण आचरण जो यद्यपि अननुमोदनीय है, अपील न्यायालय को कार्य संपन्न करने के लिए विवश करता है, (ii) तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने समक्ष आक्षेपित डिक्री को विधिमान्य मानने से पूर्व अपना निर्णय दिया है, (iii) इसलिए हम विधिमान्यता के बारे में कुछ नहीं कह रहे हैं क्योंकि संबंधित मुकदमेदार ने जिसके विरुद्ध सकारात्मक डिक्री जारी की गई है, मध्यावधि में कार्यवाही की है और चूंकि उपर्युक्त निर्णय सुनाया गया है, इसलिए निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल किए जाने तक, भले ही अपील फाइल करने के लिए विहित अवधि का अवसान नहीं हुआ है, संविदात्मक विवाह किया गया है, (iv) इसके अतिरिक्त माननीय उच्चतम न्यायालय ने संबंधित मुकदमेदार के दोषपूर्ण आचरण के लिए व्यथित पक्षकार के लिए 5 लाख रुपए की धनराशि के रूप में प्रतिकर अधिनिर्णीत किया है । तथापि, चूंकि पक्षकारों की आर्थिक स्थिति में भिन्नता है इसलिए माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए उपर्युक्त निर्णय में के पक्षकारों के बारे में यह न्यायालय यह उचित समझता है कि अपीलार्थी रीना देवी को

एक लाख रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाए जो असंबद्ध नहीं है और जो आवेदक के द्वितीय विवाह की संविदा को अविधिमान्य नहीं बनाता है उपर्युक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अभिलेख पर के सुसंगत साक्ष्य के उचित और सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकालते समय सुसंगत और परस्पर विरोधी सामग्री को विचार में लिया है । उपर्युक्त कारणों से वर्तमान अपील में कोई बल नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । आक्षेपित निर्णय और डिक्री को कायम रखकर इसकी पुष्टि की जाती है । तथापि, प्रत्यर्थी प्रमोद कुमार को यह निदेश दिया जाता है कि वह आज से दो मास की अवधि के भीतर श्रीमती रीना देवी को प्रतिकर के रूप में एक लाख रुपए की धनराशि का संदाय करेगा । (पैरा 7, 8 और 9)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 589 : **सुमन कपूर** बनाम **सुधीर कपूर** ।	7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की एफ. ए. ओ. सं. 433.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. के. शर्मा और मोहन सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से श्री निमेष गुप्ता

न्यायमूर्ति सुरेशवर ठाकुर – वर्तमान अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, चम्बा द्वारा 2014 की एच. एम. ए. अर्जी सं. 98 में तारीख 30 जून, 2016 को अभिलिखित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश ने हमारे समक्ष की अपीलार्थी और हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी के बीच वैवाहिक बंधन को विघटित किया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी (जिसे आगे 'अर्जीदार' कहा गया है) का विवाह अपीलार्थी (जिसे आगे प्रत्यर्थी कहा गया है) के साथ हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार तारीख 12 नवंबर, 2011 को संपन्न हुआ था । दोनों के विवाह से कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई । प्रत्यर्थी जे. बी. टी. अध्यापक के रूप में कार्य कर रही है और सरकारी

प्राथमिक विद्यालय, बाथरी में तैनात है, जबकि अर्जीदार बी. ई. ओ., बानीखेत के कार्यालय में वरिष्ठ सहायक के रूप में कार्य कर रहा है । उनके विवाह के पश्चात् लगभग एक मास तक उनके संबंध ठीक रहे और इसके पश्चात् प्रत्यर्थी का अर्जीदार और उसके कुटुंब के प्रति व्यवहार परिवर्तित हो गया । वह घर के कार्यों को करने से कतराने लगी । उसने विवाह के एक मास के पश्चात् ग्राम सांगरेन में अपने माता-पिता के मकान में रहना आरंभ कर दिया । जब 2012 के मई मास में उसका सरकारी प्राथमिक विद्यालय, बाथरी से स्थानांतरण हो गया तो उनके संबंध और ज्यादा खराब हो गए क्योंकि प्रत्यर्थी अपने स्थानांतरण के लिए अर्जीदार को जिम्मेदार ठहराने लगी । स्थानांतण के पश्चात् भी वह सतत् रूप से अपने माता-पिता के साथ रहती रही और वह बलेरा से बाथरी तथा बाथरी से बलेरा के लिए आती जाती रही । अर्जीदार उसे अपने घर पर लाने के लिए अनेकों बार प्रत्यर्थी के माता-पिता के मकान पर गया और प्रत्यर्थी लगभग 10 दिनों तक उसके मकान पर रही और उसके पश्चात् जून, 2012 के अंत में किसी कारण (वजह) के बिना उसका मकान छोड़ कर चली गई । जुलाई, 2012 में अर्जीदार, उसकी माता और अन्य नातेदारों ने सुलह कराने के लिए हर संभव प्रयत्न किया और प्रत्यर्थी को अपनी ससुराल चलने के लिए कहा किन्तु उसने इनकार कर दिया । इसके पश्चात् तारीख 25 नवंबर, 2012 को उसकी माता, चाचा ओम प्रकाश, बहनोई अश्विनी कुमार, सुशील कुमार, विश्वनाथ और विक्की कुमार प्रत्यर्थी को वापस लाने के लिए पुनः उसके मकान पर गए किन्तु प्रत्यर्थी ने अपने माता-पिता के दबाव में अर्जीदार के साथ रहने से इनकार कर दिया । प्रत्यर्थी ने पर्याप्त या उचित कारण के बिना और वैवाहिक नातेदारी समाप्त करने की दृष्टि से अर्जीदार के साथ रहना छोड़ दिया और उसका परित्याग कर दिया तथा किसी उचित कारण के बिना वैवाहिक दायित्वों से उसे वंचित कर दिया । अर्जीदार ने यह भी कथन किया है कि प्रत्यर्थी अपने साथ अपने सभी आभूषण और अन्य कीमती चीजें भी ले गई थी ।

3. अर्जीदार द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला के समक्ष संस्थित विवाह-विच्छेद की अर्जी का प्रत्यर्थी द्वारा उत्तर देकर विरोध किया गया था, जिसमें उसने अर्जी में अपने विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों का खंडन किया । उसने इस बात से इनकार किया कि उसका व्यवहार उचित नहीं था, और इसके बजाय उसने यह कहा कि अर्जीदार सही रीति में उसके

साथ व्यवहार नहीं कर रहा था । वह अभी भी अर्जीदार के साथ रहने के लिए तैयार है । उसने इस बात से भी इनकार किया कि अर्जीदार की माता और उसके नातेदारों ने मामले में सुलह कराने का प्रयास किया था और उसने इनकार कर दिया था । तथापि, अर्जीदार विश्वनाथ नामक अपने साथी के साथ तारीख 9 नवंबर, 2012 को उसके विद्यालय आया था और उन्होंने उससे मंगलसूत्र की मांग की थी और विवाह-विच्छेद करने पर बल दिया था । उसने यह अभिकथन किया है कि अर्जीदार ने उसका जीवन कठिन बना दिया है और यह संभव नहीं था कि वह गरिमापूर्ण रीति में उसके साथ रहे । उसने यह अभिकथित किया है कि स्वयं अर्जीदार ने अपनी अर्जी वापस ले ली थी और उत्तर में किए गए अभिकथन सही हैं, इसलिए अर्जी खारिज की जाए ।

4. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के उत्तरों को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

(1) क्या प्रत्यर्थी ने वर्तमान अर्जी प्रस्तुत करने के दो वर्ष पूर्व से अर्जीदार का परित्यजन कर दिया है, जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. पी.

(2) क्या प्रत्यर्थी अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार करती है, जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. पी.

(3) क्या अर्जी ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है, जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. आर.

(4) अनुतोष ।

5. विद्वान् जिला न्यायाधीश ने अपने समक्ष पेश किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अर्जीदार की अर्जी मंजूर कर ली ।

6. अर्जीदार और प्रत्यर्थी रीना देवी का विवाह तारीख 12 नवंबर, 2011 को संपन्न हुआ था । तथापि, उनके विवाह से कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई । अर्जीदार ने रीना देवी के साथ अपने विवाह बंधन को विघटित करने के लिए इन आधारों पर अनुरोध किया है – (i) अर्जीदार की इच्छा और उसकी सम्मति के बिना वह अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई है और उसने जून, 2012 से अपनी ससुराल छोड़ दी है और वह अब तक अपने

मायके में रह रही है । (ii) अर्जीदार प्रमोद कुमार के अपने घर पर साथ रखने के बार-बार प्रयास के बावजूद उसकी पत्नी उसके साथ रहने के लिए तैयार नहीं है, (iii) उसके पश्चात् उसने यह कथन किया है कि उसकी पत्नी ने किसी युक्तियुक्त कारण के बिना और उसकी सम्मति के बिना तथा उसकी इच्छा के बिना उसका साथ छोड़ दिया है, (iv) अत: अपने प्रकथनों के आधार पर उसने यह कहा है कि उसकी पत्नी के द्वारा उसको त्यक्त करने से उसको शारीरिक और मानसिक व्यथा और आघात पहुंचा है । परिणामतः ऊपर निर्दिष्ट प्रकथनों के आधार पर अर्जीदार ने अपने वैवाहिक बंधन को विघटित करने का अनुरोध किया । अपने प्रकथनों के सबूत में अर्जीदार ने अर्जी के समर्थन में अपनी मुख्य परीक्षा शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए पेश किया है । उसके परिसाक्ष्य का पी. डब्ल्यू. 2 और पी. डब्ल्यू. 3 द्वारा समर्थन किया गया है । ऊपर निर्दिष्ट साक्षियों द्वारा दिए गए परिसाक्ष्यों से जिसमें उनकी मुख्य परीक्षा सम्मिलित है और जो शपथ पर दी गई है, हिन्दू विवाह अर्जी में उल्लिखित आधारों का समर्थन होता है और उनकी विस्तारपूर्वक प्रतिपरीक्षा के बावजूद उनके परिसाक्ष्य अखंडित रहे हैं । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी रीना देवी द्वारा पेश किया गया प्रत्युत्तर साक्ष्य लिखित कथन में किए गए उसके प्रकथनों से मेल नहीं खाता है । विशेषतया यह बात कि वह जुलाई, 2012 के जुलाई मास में अपनी ससुराल से बाहर रही थी और इसके समर्थन में उसने आर. डब्ल्यू. 2 का परिसाक्ष्य पेश किया है जो कि सही नहीं है और इसलिए त्यक्त किए जाने योग्य है और यह साक्ष्य अभिवचनों के भी परे है । परिणामतः यह अभिनिर्धारित किया गया (i) प्रत्यर्थी रीना देवी ने अपने पति के मकान पर साथ न रहने के लिए एक मिथ्या आधार लिया है (ii) उसने अपने पति के मकान से जाने के लिए कोई युक्तियुक्त कारण नहीं दिया है । (iii) वह अपने पति की सम्मति के बिना और उसकी इच्छा के बिना उससे पृथक् रह रही है । साथ-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि रीना देवी ने अर्जीदार का परित्यजन कर दिया है, जिसके कारण उसके साथ मानसिक क्रूरता हुई है ।

7. इस प्रक्रम पर अर्जीदार प्रमोद कुमार द्वारा प्रस्तुत अविवादित तथ्यों पर विचार करना उचित होगा क्योंकि इस अन्तराल में हिन्दू विवाह अर्जी पर उपयुक्त निर्णय दिया गया है और रीना देवी द्वारा इसके विरुद्ध अपील संस्थित की गई है (i) अपील फाइल किए जाने के लिए अवधि के अवसान के बावजूद विद्वान् जिला न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील

फाइल की गई है (ii) उसने विवाह की संविदा की है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **सुमन कपूर** बनाम **सुधीर कपूर**[1] वाले मामले के निर्णय के पैरा 47 और 48 में इस बारे में निश्चित मत व्यक्त किया गया है जिसको इस मामले में उद्धृत करना सुसंगत होगा :–

> "47. चूंकि हम मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की पुष्टि कर रहे हैं जैसा कि दोनों न्यायालयों अर्थात् विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है इसलिए जहां तक निचले न्यायालयों की डिक्री को उलटे जाने का संबंध है, हम कोई अनुतोष मंजूर नहीं कर रहे हैं । तथापि, हमारे मतानुसार पत्नी द्वारा इस न्यायालय में अपील के लिए विशेष इजाजत आवेदन फाइल करने के कारण प्रत्यर्थी-पति को निर्बंधित अवधि के अवसान के पूर्व पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए ।
>
> 48. यह सही है कि संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील फाइल करना पक्षकार का एक अधिकार नहीं है । यह एक ऐसा विवेक अधिकार है जो इस न्यायालय को समुचित मामलों में अपील फाइल करने के लिए आवेदक को इजाजत देने के लिए अनुज्ञात करता है । तथापि, चूंकि संविधान किसी पक्षकार को उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध 90 दिन की अवधि के भीतर इस न्यायालय में समावेदन के लिए अनुज्ञात करता है इसलिए हमारा यह मत है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा संपन्न कार्य की स्थिति सृजित करने से कोई अवबोधक कार्रवाई नहीं की जा सकती । यद्यपि हम संपूर्ण मामले पर विचार करने के पश्चात् न तो अपील मंजूर कर रहे हैं और न ही प्रत्यर्थी-पति के हक में विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर और अपील न्यायालय द्वारा पुष्ट की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री अपास्त कर रहे हैं तथापि, हमारे मतानुसार मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा यदि हम प्रत्यर्थी-पति को, अपीलार्थी-पत्नी के लिए 5 लाख रुपए की धनराशि का संदाय करने का निदेश करें । उक्त संदाय तारीख 31 दिसंबर, 2008 तक या इससे पूर्व किया जाएगा ।"

यह अधिदेशाधीन है कि (i) किसी पक्षकार का जिसके हक में हिन्दू विवाह अर्जी पर एक सकारात्मक निर्णय सुनाया गया है, उपर्युक्त दोषपूर्ण आचरण

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 589.

जो यद्यपि अननुमोदनीय है, अपील न्यायालय को कार्य-संपन्न करने के लिए विवश करता है, (ii) तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने समक्ष आक्षेपित डिक्री को विधिमान्य मानने से पूर्व अपना निर्णय दिया है, (iii) इसलिए हम विधिमान्यता के बारे में कुछ नहीं कह रहे हैं क्योंकि संबंधित मुकदमेदार ने जिसके विरुद्ध सकारात्मक डिक्री जारी की गई है, मध्यावधि में कार्यवाही की है और चूंकि उपयुक्त निर्णय सुनाया गया है, इसलिए निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल किए जाने तक, भले ही अपील फाइल करने के लिए विहित अवधि का अवसान नहीं हुआ है, संविदात्मक विवाह किया गया है, (iv) इसके अतिरिक्त माननीय उच्चतम न्यायालय ने संबंधित मुकदमेदार के दोषपूर्ण आचरण के लिए व्यथित पक्षकार के लिए 5 लाख रुपए की धनराशि के रूप में प्रतिकर अधिनिर्णीत किया है । तथापि, चूंकि पक्षकारों की आर्थिक स्थिति में भिन्नता है इसलिए माननीय उच्चतम न्यायालय दिए गए उपर्युक्त निर्णय में के पक्षकारों के बारे में न्यायालय यह उचित समझता है कि अपीलार्थी रीना देवी को एक लाख रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाए जो असंबद्ध नहीं है और जो आवेदक के द्वितीय विवाह की संविदा को अविधिमान्य नहीं बनाता है ।

8. उपर्युक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अभिलेख पर के सुसंगत साक्ष्य के उचित और सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकालते समय सुसंगत और परस्पर विरोधी सामग्री को विचार में लिया है ।

9. उपर्युक्त कारणों से वर्तमान अपील में कोई बल नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । आक्षेपित निर्णय और डिक्री को कायम रखकर इसकी पुष्टि की जाती है । तथापि, प्रत्यर्थी प्रमोद कुमार को यह निदेश दिया जाता है कि वह आज से दो मास की अवधि के भीतर श्रीमती रीना देवी को प्रतिकर के रूप में एक लाख रुपए की धनराशि का संदाय करेगा । सभी लंबित आवेदनों को भी निपटाया जाता है । अभिलेख तुरंत वापस भेजे जाएं ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

(1955 का अधिनियम संख्यांक 25)[1]

[18 मई, 1955]

हिन्दुओं के विवाह से संबंधित विधि को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के छठे वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम और विस्तार** – (1) यह अधिनियम हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है और यह उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित उन हिन्दुओं को भी लागू है जो उक्त राज्यक्षेत्रों के बाहर हों ।

2. **अधिनियम का लागू होना** – (1) यह अधिनियम लागू है –

(क) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो हिन्दू धर्म के किसी भी रूप या विकास के अनुसार, जिसके अन्तर्गत वीरशैव, लिंगायत अथवा ब्राह्मो समाज, प्रार्थनासमाज या आर्यसमाज के अनुयायी भी आते हैं, धर्मतः हिन्दू हो ;

(ख) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो धर्मतः जैन, बौद्ध या सिक्ख हो ; तथा

(ग) ऐसे किसी भी अन्य व्यक्ति जो उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित हो और धर्मतः मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी या यहूदी न हो, जब तक कि यह साबित न कर दिया जाए कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो ऐसा

---

[1] इस अधिनियम का, 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (1.7.1965 से) दादरा और नागर हवेली पर, और 1963 के विनियम सं. 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा (1.10.1963 से) उपांतरों सहित पांडिचेरी पर विस्तार किया गया ।

कोई भी व्यक्ति एतस्मिन् उपबन्धित किसी भी बात के बारे में हिन्दू विधि या उस विधि के भागरूप किसी रूढ़ि या प्रथा द्वारा शासित न होता ।

स्पष्टीकरण – निम्नलिखित व्यक्ति धर्मतः यथास्थिति, हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख है :–

(क) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता दोनों ही धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हों,

(ख) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता में से कोई एक धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो और जो उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के सदस्य के रूप में पला हो जिसका वह माता या पिता सदस्य है या था, तथा

(ग) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म में संपरिवर्तित या प्रतिसंपरिवर्तित हो गया हो ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसी जनजाति के सदस्यों को जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति हो, लागू न होगी जब तक कि केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न कर दे ।

(3) इस अधिनियम के किसी भी प्रभाग में आए हुए "हिन्दू" पद का ऐसा अर्थ लगाया जाएगा मानो उसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता हो जो, यद्यपि धर्मतः हिन्दू नहीं है तथापि, ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिनियम इस धारा के अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर लागू होता है ।

3. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "रूढ़ि" और "प्रथा", पद ऐसे किसी भी नियम का संज्ञान कराते हैं जिसने दीर्घकाल तक निरंतर और एकरूपता से अनुपालित किए जाने के कारण किसी स्थानीय क्षेत्र, जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के हिन्दुओं में विधि का बल अभिप्राप्त कर लिया हो :

परंतु यह तब जब कि वह नियम निश्चित हो, और अयुक्तियुक्त या लोकनीति के विरुद्ध न हो : तथा

परंतु यह और भी कि ऐसे नियम की दशा में जो एक कुटुंब को ही लागू हो, उसकी निरंतरता उस कुटुंब द्वारा बंद न कर दी गई हो ;

(ख) "जिला न्यायालय" से अभिप्रेत है ऐसे किसी क्षेत्र में, जिसके लिए कोई नगर सिविल न्यायालय हो, वह न्यायालय और अन्य किसी क्षेत्र में आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय तथा इसके अंतर्गत ऐसा कोई भी अन्य सिविल न्यायालय आता है जिसे राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम में व्यवहृत बातों के बारे में अधिकारितायुक्त विनिर्दिष्ट कर दे ;

(ग) "पूर्ण रक्त" और "अर्ध रक्त" – कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे से पूर्ण रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जब कि वे एक ही पूर्वज से एक ही पत्नी द्वारा अवजनित हों और अर्थ रक्त से तब जब कि वह एक ही पूर्वज से किन्तु भिन्न पत्नियों द्वारा अवजनित हों ;

(घ) "एकोदर रक्त" – दो व्यक्ति एक से एकोदर रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जब कि वे एक ही पूर्वजा से किन्तु भिन्न पतियों द्वारा अवजनित हों ।

स्पष्टीकरण – खंड (ग) और (घ) में "पूर्वज" के अंतर्गत पिता और "पूर्वजा" के अंतर्गत माता आती है ;

(ङ) "विहित" से अभिप्रेत है इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित ;

(च) (i) "सपिंड नातेदारी" जब निर्देश किसी व्यक्ति के प्रति हो तो, माता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में तीसरी पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत तीसरी पीढ़ी भी आती है) और पिता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में पांचवीं पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत पांचवीं पीढ़ी भी आती है), जाती है, हर एक दशा में वंश परंपरा सम्पृक्त व्यक्ति से, जिसे पहले पीढ़ी का गिना जाएगा, ऊपर की ओर चलेगी ;

(ii) दो व्यक्ति एक दूसरे के "सपिंड" तब कहे जाते हैं जबकि या तो एक उनमें से दूसरे का सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर पूर्वपुरुष हो या जब कि उनका ऐसा कोई एक ही पारंपरिक पूर्वपुरुष, जो, निर्देश उनमें से जिस किसी के भी प्रति हो, उससे सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर हो ;

(छ) "प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियां" – दो व्यक्ति प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियों के भीतर कहे जाते हैं –

(i) यदि एक उनमें से दूसरे का पारंपरिक पूर्वपुरुष हो ; या

(ii) यदि एक उनमें से दूसरे के पारंपरिक पूर्वपुरुष या वंशज की पत्नी या पति रहा हो ; या

(iii) यदि एक उनमें से दूसरे के भाई की या पिता अथवा माता के भाई की, या पितामह अथवा पितामही के भाई की या मातामह अथवा मातामही के भाई की पत्नी रही हो ; या

(iv) यदि वे भाई और बहिन, ताया, चाचा और भतीजी, मामा और भांजी, फूफी और भतीजा, मौसी और भांजा या भाई-बहिन के अपत्य, भाई-भाई के अपत्य अथवा बहिन-बहिन के अपत्य हों ।

स्पष्टीकरण – खंड (च) और (छ) के प्रयोजनों के लिए "नातेदारी" के अंतर्गत आती है –

(i) पूर्ण रक्त की नातेदारी, तथैव अर्ध या एकोदर रक्त की नातेदारी ;

(ii) धर्मज रक्त की नातेदारी, तथैव अधर्मज रक्त की नातेदारी ;

(iii) रक्तजन्य नातेदारी, तथैव दत्तक नातेदारी ;

और उन खंडों में नातेदारी संबंधी सभी पदों का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा ।

4. **अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव** – इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय –

(क) हिन्दू विधि का कोई ऐसा शास्त्रवाक्य, नियम या निर्वचन या उस विधि की भागरूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा जो इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त रही हो ऐसे किसी भी विषय के बारे में, जिसके लिए इस अधिनियम में उपबन्ध किया गया है, प्रभावहीन हो जाएगी ;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त कोई भी अन्य विधि, वहां तक प्रभावहीन हो जाएगी जहां तक कि वह इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों में से किसी से भी असंगत हो ।

हिन्दू विवाह

5. **हिन्दू विवाह के लिए शर्तें** – दो हिन्दुओं के बीच विवाह अनुष्ठापित किया जा सकेगा यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाएं, अर्थात् :–

(i) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से, न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का कोई जीवित पति हो ;

[1][(ii) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से कोई पक्षकार –

(क) चित्त-विकृति के परिणामस्वरूप विधिमान्य सम्मति देने में असमर्थ न हो ; या

(ख) विधिमान्य सम्मति देने में समर्थ होने पर भी इस प्रकार के या इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित न रहा हो कि वह विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए, अयोग्य हो ; या

(ग) उसे उन्मत्तता [2]*** का बार-बार दौरा न पड़ता हो ;]

(iii) विवाह के समय वर ने [3][इक्कीस वर्ष] की आयु और वधू ने [4][अठारह वर्ष] की आयु पूरी कर ली हो ;

(iv) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे प्रतिषिद्ध नातेदारी डिग्रियों के भीतर न हों ;

(v) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ियां प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे एक दूसरे के सपिण्ड न हों ;

[5] * * * *

6. [**विवाह में अभिभावकता** ।] – बाल विवाह अवरोध (संशोधन)

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 2 द्वारा खण्ड (ii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1999 के अधिनियम सं. 39 की धारा 2 द्वारा "या मिरगी" शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "अठारह वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "पन्द्रह वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[5] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) खण्ड (vi) का लोप किया गया ।

अधिनियम, 1978 (1978 का 2) की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) निरसित ।

7. **हिन्दू विवाह के लिए कर्मकांड** – (1) हिन्दू विवाह उसके पक्षकारों में से किसी को भी रूढ़िगत रीतियों और कर्मकांड के अनुसार अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

(2) जहां कि ऐसी रीतियों और कर्मकांड के अन्तर्गत सप्तपदी (अर्थात् अग्नि के समक्ष वर और वधू द्वारा संयुक्ततः सात पद चलना) आती हो वहां विवाह पूर्ण और आबद्धकर तब होता है जब सातवां पद चल लिया जाता है ।

8. **हिन्दू विवाहों का रजिस्ट्रीकरण** – (1) राज्य सरकार हिन्दू विवाहों का साबित किया जाना सुकर करने के प्रयोजन से ऐसे नियम बना सकेगी जो यह उपबन्धित करे कि ऐसे किसी विवाह के पक्षकार अपने विवाह से सम्बद्ध विशिष्टियों को इस प्रयोजन के लिए रखे गए हिन्दू विवाह रजिस्टर में ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जैसी कि विहित की जाएं, प्रविष्टि करा सकेंगे ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह यह उपबन्ध कर सकेगी कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट विशिष्टियों का प्रविष्ट किया जाना उस राज्य में या उसके किसी भाग विशेष में, चाहे सभी दशाओं में, चाहे ऐसी दशाओं में, जो विनिर्दिष्ट की जाएं, वैवश्यक होगा और जहां कि कोई ऐसा निदेश निकाला गया हो, वहां इस निमित्त बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जुर्माने से, जो कि पच्चीस रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(3) इस धारा के अधीन बनाए गए सभी नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मण्डल के समक्ष रखे जाएंगे ।

(4) हिन्दू विवाह रजिस्टर निरीक्षण के लिए सभी युक्तियुक्त समय पर खुला रहेगा और अपने में अन्तर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य होगा तथा उसमें से प्रमाणित उद्धरण, आवेदन करने और रजिस्ट्रार को विहित फीस का संदाय करने पर, उसके द्वारा दिए जाएंगे ।

(5) इस धारा में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी प्रविष्टि करने में हुआ लोप किसी हिन्दू विवाह की विधिमान्यता पर प्रभाव न डालेगा ।

दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक पृथक्करण

9. **दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन** – [1]*** जब कि पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से किसी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना प्रत्याहृत कर लिया हो तब व्यथित पक्षकार दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जिला न्यायालय में अर्जी द्वारा आवेदन कर सकेगा और न्यायालय ऐसी अर्जी में किए गए कथनों के सत्य के बारे में तथा इस बात के बारे में कि इसके लिए कोई वैध आधार नहीं है कि आवेदन मंजूर क्यों न कर लिया जाए अपना समाधान हो जाने पर दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन डिक्री कर सकेगा ।

[2][**स्पष्टीकरण** – जहां यह प्रश्न उठता है कि क्या साहचर्य के प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, वहां युक्तियुक्त प्रतिहेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है ।]

[3]* * * * *

10. **न्यायिक पृथक्करण** – [4][(1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा 13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी पेश कर सकेगा ।]

(2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किन्तु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को विखण्डित कर सकेगा ।

विवाह की अकृतता और विवाह-विच्छेद

11. **शून्य विवाह** – इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, यदि वह धारा 5 के खण्ड (i), (iv) और (v) में विनिर्दिष्ट शर्तों में

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा कोष्ठक और अंक "(1)" का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा उपधारा (2) का लोप किया गया ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 4 द्वारा उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

से किसी एक का भी उल्लंघन करता हो तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा [1][दूसरे पक्षकार के विरुद्ध] उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा ।

12. **शून्यकरणीय विवाह** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, निम्नलिखित आधारों में से किसी पर भी शून्यकरणीय होगा और अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल किया जा सकेगा :–

[2][(क) कि प्रत्यर्थी की नपुंसकता के कारण विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ है ; या]

(ख) कि विवाह धारा 5 के खण्ड (ii) में विनिर्दिष्ट शर्तों का उल्लंघन करता है ; या

(ग) कि अर्जीदार की सम्मति या, जहां कि [3][धारा 5 जिस रूप में बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का 2) के प्रारम्भ के ठीक पूर्व विद्यमान थी उस रूप में उसके अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो] वहां ऐसे संरक्षक की संपत्ति, बल प्रयोग द्वारा [4][या कर्मकाण्ड की प्रकृति के बारे में या प्रत्यर्थी से संबंधित किसी तात्विक तथ्य या परिस्थिति के बारे में कपट द्वारा] अभिप्राप्त की गई थी ; या

(घ) कि प्रत्यर्थी विवाह के समय अर्जीदार से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा गर्भवती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, विवाह के बातिलीकरण की कोई अर्जी –

(क) उपधारा (1) के खण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर ग्रहण न की जाएगी, यदि –

(i) अर्जी, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने या

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 5 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा खण्ड (क) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनूसूची द्वारा (1.10.1978 से) "धारा 5 के अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा "या कपट द्वारा" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

कपट का पता चल जाने के एकाधिक वर्ष के पश्चात् दी जाए ; या

(ii) अर्जीदार, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने के या कपट का पता चल जाने के पश्चात् विवाह के दूसरे पक्षकार के साथ अपनी पूर्ण सम्मति से पति या पत्नी के रूप में रहा या रही है ;

(ख) उपधारा (1) के खण्ड (घ) में विनिर्दिष्ट आधार पर तब तक ग्रहण न की जाएगी जब तक कि न्यायालय का यह समाधान न हो जाए, कि –

(i) अर्जीदार विवाह के समय अभिकथित तथ्यों से अनभिज्ञ था ;

(ii) कार्यवाही, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, ऐसे प्रारम्भ के एक वर्ष के भीतर और ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों की दशा में, विवाह की तारीख से एक वर्ष के भीतर संस्थित की गई है ; और

(iii) [1][उक्त आधार] के अस्तित्व का अर्जीदार को पता चलने के समय से अर्जीदार की सम्मति से कोई वैवाहिक संभोग नहीं हुआ है ।

13. **विवाह-विच्छेद** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –

[2][(i) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है ; या

(iक) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है ; या

(iख) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा "डिक्री के आधारों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा खंड (i) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

कम से कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि पर अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है ; या]

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तित हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है ; या

[1][(iii) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरन्तर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण – इस खण्ड में, –

(क) "मानसिक विकार" पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का संरोध या अपूर्ण विकास, मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य विकार या निःशक्तता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विखंडित मनस्कता भी है ;

(ख) "मनोविकृति" पद से मस्तिष्क का दीर्घस्थायी विकार या निःशक्तता (चाहे इसमें वृद्धि की अवसामान्यता हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्षकार का आचरण असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है और चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता हो या नहीं ; या]

(iv) [2][दूसरा पक्षकार] उग्र और असाध्य कुष्ठ से पीड़ित रहा है ; या

(v) [2][दूसरा पक्षकार] संचारी रूप से रतिज रोग से पीड़ित रहा है ; या

(vi) दूसरा पक्षकार किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है ; या

(vii) दूसरा पक्षकार जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है जिन्होंने उसके बारे में यदि वह पक्षकार जीवित होता तो स्वाभाविकतः

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा खंड (iii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

सुना होता । [1]***

[1]* * * * *

[2][**स्पष्टीकरण** – इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तदनुसार लगाए जाएंगे ।]

[3][(1क) विवाह का कोई भी पक्षकार, विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगा –

(i) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के धारण के पश्चात् [4][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर उन पक्षकारों के बीच सहवास का कोई पुनरारम्भ नहीं हुआ है; या

(ii) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, दाम्पत्याधिकार के प्रत्यास्थापन की डिक्री के पश्चात् [4][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्षकारों के बीच दाम्पत्याधिकारों का कोई प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।]

(2) पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगी –

(i) कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा

---

[1] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा खंड (viii) और खंड (ix) का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा "दो वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

में, पति ने ऐसे प्रारंभ के पूर्व फिर विवाह कर लिया था या कि अर्जीदार के विवाह के अनुष्ठान के समय पति की कोई ऐसी दूसरी पत्नी जीवित थी जिसके साथ उसका विवाह ऐसे प्रारंभ के पूर्व हुआ था :

परन्तु यह तब जब कि दोनों दशाओं में दूसरी पत्नी अर्जी के उपस्थापन के समय जीवित हो ; या

(ii) कि पति विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् बलात्संग, गुदामैथुन या पशुगमन का [1][दोषी रहा है ; या]

[2][(iii) कि हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956(1956 का 78) की धारा 18 के अधीन वाद में या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के अधीन [या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) की तत्समान धारा 488 के अधीन] कार्यवाही में, पत्नी को भरण-पोषण दिलवाने के लिए पति के विरुद्ध, यथास्थिति, डिक्री या आदेश इस बात के होते हुए भी पारित किया गया है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिक्री या आदेश पारित किए जाने के समय से एक वर्ष या उससे ऊपर की कालावधि भर पक्षकारों के बीच सहवास का पुनरारम्भ नहीं हुआ है ;

(iv) कि उसका विवाह (चाहे विवाहोत्तर संभोग हुआ हो या नहीं) उसकी पन्द्रह वर्ष की आयु हो जाने के पूर्व अनुष्ठापित किया गया था और उसने पन्द्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् किन्तु अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवाह का निराकरण कर दिया है ।

स्पष्टीकरण – यह खण्ड उस विवाह को भी लागू होगा जो विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया है ।]

[3][13क. **विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को वैकल्पिक अनुतोष** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी पर, उस दशा को छोड़कर जिसमें अर्जी धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), (vi) और (vii) में वर्णित आधारों पर है, यदि न्यायालय मामले की परिस्थितियों को ध्यान में

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा "दोषी रहा है" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 8 द्वारा अंतःस्थापित ।

रखते हुए यह न्यायसंगत समझता है तो, वह विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित कर सकेगा ।

13ख. **पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद** – (1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और उस तारीख से अठारह मास के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ले ली गई है तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।]

14. **विवाह से एक वर्ष के भीतर विवाह-विच्छेद के लिए कोई अर्जी उपस्थापित न की जाएगी** – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन की कोई अर्जी ग्रहण करने के लिए तब तक सक्षम न होगा [1][जब तक कि विवाह की तारीख से उस अर्जी के पेश किए जाने की तारीख तक एक वर्ष बीत न चुका हो] :

परन्तु न्यायालय उन नियमों के अनुसार किए गए आवेदन पर, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, किसी अर्जी का, विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष बीतने के पूर्व] भी इस आधार पर उपस्थापित किया जाना अनुज्ञात कर सकेगा कि मामला अर्जीदार के लिए असाधारण कष्ट का है या प्रत्यर्थी की असाधारण दुराचारिता से युक्त है; किन्तु यदि अर्जी की सुनवाई के समय न्यायालय को यह प्रतीत हो कि अर्जीदार ने अर्जी को उपस्थापित करने की इजाजत किसी दुर्व्यपदेशन या मामले की प्रकृति के प्रच्छादन द्वारा अभिप्राप्त की थी तो वह, डिक्री देने की दशा में, इस शर्त के अध्यधीन डिक्री दे सकेगा कि

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

डिक्री तब तक संप्रभाव न होगी जब तक कि विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष का अवसान] न हो जाए अथवा उस अर्जी को ऐसी किसी अर्जी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना खारिज कर सकेगा जो [1][उक्त एक वर्ष के अवसान] के पश्चात् उन्हीं या सारतः उन्हीं तथ्यों पर दी जाए जो ऐसे खारिज की गई अर्जी के समर्थन में अभिकथित किए गए थे ।

(2) विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष के अवसान] से पूर्व विवाह-विच्छेद की अर्जी उपस्थापित करने की इजाजत के लिए इस धारा के अधीन किए गए किसी आवेदन का निपटारा करने में न्यायालय उस विवाह से उत्पन्न किसी अपत्य के हितों पर तथा इस बात पर ध्यान रखेगा कि पक्षकारों के बीच [1][उक्त एक वर्ष] के अवसान से हुई पूर्व मेल-मिलाप की कोई युक्तियुक्त संभाव्यता है या नहीं ।

15. **कब विवाह-विच्छेद प्राप्त व्यक्ति पुनः विवाह कर सकेगा** – जब कि विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित कर दिया गया हो और या तो डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार ही न हो या यदि अपील का ऐसा अधिकार हो तो अपील करने के समय का कोई अपील उपस्थापित हुए बिना अवसान हो गया हो या अपील की तो गई हो किन्तु खारिज कर दी गई हो तब विवाह के किसी पक्षकार के लिए पुनः विवाह करना विधिपूर्ण होगा ।

[2]* * * * *

[3][16. **शून्य और शून्यकरणीय विवाहों के अपत्यों की धर्मजता** – (1) इस बात के होते हुए भी कि विवाह धारा 11 के अधीन अकृत और शून्य है, ऐसे विवाह का ऐसा अपत्य धर्मज होगा, जो विवाह के विधिमान्य होने की दशा में धर्मज होता चाहे ऐसे अपत्य का जन्म विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् हुआ हो और चाहे उस विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री इस अधिनियम के अधीन मंजूर की गई हो या नहीं और चाहे वह विवाह इस अधिनियम के अधीन अर्जी से भिन्न आधार पर शून्य अभिनिर्धारित किया गया हो या नहीं ।

(2) जहां धारा 12 के अधीन शून्यकरणीय विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री मंजूर की जाती है वहां डिक्री की जाने से पूर्व जनित या गर्भाहित ऐसा कोई अपत्य, जो यदि विवाह डिक्री की तारीख को अकृत

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 9 कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 10 द्वारा परन्तुक का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 11 द्वारा धारा 16 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

किए जाने की बजाय विघटित कर दिया गया होता तो विवाह के पक्षकारों का धर्मज अपत्य होता, अकृतता की डिक्री होते हुए भी उनका धर्मज अपत्य समझा जाएगा ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे विवाह के किसी ऐसे अपत्य को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 12 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा अकृत किया गया है, उसके माता-पिता से भिन्न किसी व्यक्ति की सम्पत्ति में या सम्पत्ति के लिए कोई अधिकार किसी ऐसी दशा में प्रदान करती है जिसमें कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो वह अपत्य अपने माता-पिता का धर्मज अपत्य न होने के कारण ऐसा कोई अधिकार रखने या अर्जित करने में असमर्थ होता ।]

17. **द्विविवाह के लिए दंड** – यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् दो हिन्दुओं के बीच अनुष्ठापित किसी विवाह की तारीख पर ऐसे विवाह के किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित था या थी तो ऐसा विवाह शून्य होगा और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 और 495 के उपबन्ध उसे तद्नुसार लागू होंगे ।

18. **हिन्दू विवाह की कतिपय अन्य शर्तों के उल्लंघन के लिए दंड** – हर व्यक्ति जो अपना कोई ऐसा विवाह उपाप्त करेगा जो धारा 5 के खण्ड (iii), (iv) [1][और (v)] में विनिर्दिष्ट शर्तों के उल्लंघन में इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया हो वह –

(क) धारा 5 के खण्ड (iii) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि पन्द्रह दिन तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से,

(ख) धारा 5 के खण्ड (iv) या खण्ड (v) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से । [2]***

---

[1] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "(v) और (vi)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "और" शब्द का लोप किया गया ।

[1]* * * * *

अधिकारिता और प्रक्रिया

[2][19. **वह न्यायालय जिसमें अर्जी उपस्थापित की जाएगी** – इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी उस जिला न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी जिसकी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर –

(i) विवाह का अनुष्ठापन हुआ था; या

(ii) प्रत्यर्थी, अर्जी के पेश किए जाने के समय, निवास करता है; या

(iii) विवाह के पक्षकारों ने अंतिम बार एक साथ निवास किया था; या

[3][(iiiक) यदि पत्नी अर्जीदार है तो जहां वह अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रही है, या]

(iv) अर्जीदार के अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रहा है, यह ऐसे मामले में, जिसमें प्रत्यर्थी उस समय ऐसे राज्यक्षेत्र के बाहर निवास कर रहा है जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है अथवा वह जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे में, यदि वह जीवित होता तो, स्वाभाविकतया सुना होता ।]

20. **अर्जियों की अन्तर्वस्तु और सत्यापन** – (1) इस धारा के अधीन उपस्थापित हर अर्जी उन तथ्यों को जिन पर अनुतोष का दावा आधारित हो इतने स्पष्ट तौर पर कथित करेगी जितना उस मामले की प्रकृति अनुज्ञात करे [4][और धारा 11 के अधीन अर्जी को छोड़कर] ऐसी हर अर्जी [यह भी कथित करेगी] कि अर्जीदार और विवाह के दूसरे पक्षकार के बीच कोई सन्धि नहीं है ।

(2) इस अधिनियम के अधीन दी जाने वाली हर अर्जी में अन्तर्विष्ट कथन वादपत्रों के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित रीति से अर्जीदार या अन्य सक्षम व्यक्ति द्वारा सत्यापित किए जाएंगे और सुनवाई के समय साक्ष्य के रूप

---

[1] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) खण्ड (ग) का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 12 द्वारा धारा 19 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 4 द्वारा (23.12.2003 से) अंतःस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 13 द्वारा "और वह यह और भी कथित करेगी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

में ग्राह्य होंगे ।

21. **1908 के अधिनियम संख्यांक 5 का लागू होना** – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के और उन नियमों के जो उच्च न्यायालय इस निमित्त बनाए, अध्यधीन यह है कि इस अधिनियम के अधीन सब कार्यवाहियां जहां तक हो सकेगा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 द्वारा विनियमित होंगी ।

[1][21क. **कुछ मामलों में अर्जियों को अन्तरित करने की शक्ति** – (1) जहां –

(क) इस अधिनियम के अधीन कोई अर्जी अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में विवाह के किसी पक्षकार द्वारा धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए पेश की गई है; और

(ख) उसके पश्चात् इस अधिनियम के अधीन कोई दूसरी अर्जी विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किसी आधार पर धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए, चाहे उसी जिला न्यायालय में अथवा उसी राज्य के या किसी भिन्न राज्य के किसी भिन्न जिला न्यायालय में पेश की गई है,

वहां ऐसी अर्जियों के संबंध में उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट रीति से कार्यवाही की जाएगी ।

(2) ऐसे मामले में जिसे उपधारा (1) लागू होती है, –

(क) यदि ऐसी अर्जियां एक ही जिला न्यायालय में पेश की जाती हैं तो दोनों अर्जियों का विचारण और उनकी सुनवाई उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ की जाएगी ;

(ख) यदि ऐसी अर्जियां भिन्न-भिन्न जिला न्यायालयों में पेश की जाती हैं तो बाद वाली पेश की गई अर्जी उस जिला न्यायालय को अन्तरित की जाएगी जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी, और दोनों अर्जियों की सुनवाई और उनका निपटारा उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ किया जाएगा जिसमें पहली वाली अर्जी पेश की गई थी ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 14 द्वारा अन्तःस्थापित ।

(3) ऐसे मामले में, जिसे उपधारा (2) का खंड (ख) लागू होता है, यथास्थिति, वह न्यायालय या सरकार, जो किसी वाद या कार्यवाही को उस जिला न्यायालय से, जिसमें बाद वाली अर्जी पेश की गई है, उच्च न्यायालय को जिसमें पहले वाली अर्जी लम्बित है, अन्तरित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन सक्षम है, ऐसी बाद वाली अर्जी का अन्तरण करने के लिए अपनी शक्तियों का वैसे ही प्रयोग करेगी मानो वह उक्त संहिता के अधीन ऐसा करने के लिए सशक्त की गई है ।

21ख. **इस अधिनियम के अधीन अर्जियों के विचारण और निपटारे से संबंधित विशेष उपबन्ध** – (1) इस अधिनियम के अधीन अर्जी का विचारण, जहां तक कि न्याय के हित से संगत रहते हुए उस विचारण के बारे में साध्य हो, दिन प्रतिदिन तब तक निरन्तर चालू रहेगा जब तक कि वह समाप्त न हो जाए किन्तु उस दशा में नहीं जिसमें न्यायालय विचारण का अगले दिन से परे के लिए स्थगन उन कारणों से आवश्यक समझे जो लेखबद्ध किए जाएंगे ।

(2) इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी का विचारण जहां तक संभव हो शीघ्र किया जाएगा और प्रत्यर्थी पर अर्जी की सूचना की तामील होने की तारीख से छह मास के अन्दर विचारण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

(3) इस अधिनियम के अधीन हर अपील की सुनवाई जहां तक संभव हो शीघ्र की जाएगी और प्रत्यर्थी पर अपील की सूचना की तामील होने की तारीख से तीन मास के अंदर सुनवाई समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

21ग. **दस्तावेजी साक्ष्य** – किसी अधिनियमिति में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी यह है कि इस अधिनियम के अधीन अर्जी के विचारण को किसी कार्यवाही में कोई दस्तावेज साक्ष्य में इस आधार पर अग्राह्य नहीं होगी कि वह सम्यक् रूप से स्टाम्पित या रजिस्ट्रीकृत नहीं है ।]

[1][22. **कार्यवाहियों का बन्द कमरे में होना और उन्हें मुद्रित या प्रकाशित न किया जाना** – (1) इस अधिनियम के अधीन हर कार्यवाही बन्द कमरे में की जाएगी और किसी व्यक्ति के लिए ऐसी किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी बात को मुद्रित या प्रकाशित करना विधिपूर्ण नहीं होगा किन्तु उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय को छोड़कर जो उस न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा से मुद्रित या प्रकाशित किया गया है ।

(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के उपबन्धों के उल्लंघन में कोई

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 15 द्वारा धारा 22 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

बात मुद्रित या प्रकाशित करेगा तो वह जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।]

23. **कार्यवाहियों में डिक्री** – (1) यदि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में चाहे उसमें प्रतिरक्षा की गई हो या नहीं, न्यायालय का समाधान हो जाए कि –

(क) अनुतोष अनुदत्त करने के आधारों में से कोई न कोई आधार विद्यमान है और अर्जीदार [1][उन मामलों को छोड़कर, जिनमें उसके द्वारा धारा 5 के खण्ड (ii) के उपखण्ड (क), उपखण्ड (ख) या उपखण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर अनुतोष चाहा गया है] अनुतोष के प्रयोजन से अपने ही दोष या निर्योग्यता का किसी प्रकार फायदा नहीं उठा रहा या उठा रही है, और

(ख) जहां कि अर्जी का आधार [2]*** धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (i) में विनिर्दिष्ट आधार हो वहां न तो अर्जीदार परिवादित कार्य या कार्यों का किसी प्रकार से उपसाधक रहा है और न उसने उनका मौनानुमोदन या उपमर्षण किया है अथवा जहां कि अर्जी का आधार क्रूरता हो वहां अर्जीदार ने उस क्रूरता का किसी प्रकार उपमर्षण नहीं किया है, और

[3][(खख) जब विवाह-विच्छेद पारस्परिक सम्मति के आधार पर चाहा गया है, और ऐसी सम्मति बल, कपट या असम्यक् असर द्वारा अभिप्राप्त नहीं की गई है, और]

(ग) [4][अर्जी (जो धारा 11 के अधीन पेश की गई अर्जी नहीं है)] प्रत्यर्थी के साथ दुस्सन्धि करके उपस्थापित या अभियोजित नहीं की जाती है, और

(घ) कार्यवाही संस्थित करने में कोई अनावश्यक या अनुचित विलम्ब नहीं हुआ है, और

(ङ) अनुतोष अनुदत्त न करने के लिए कोई अन्य वैध आधार नहीं है, तो ऐसी ही दशा में, किन्तु अन्यथा नहीं, न्यायालय तद्नुसार ऐसा अनुतोष डिक्री कर देगा ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा कतिपय शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा "अर्जी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व यह न्यायालय का प्रथमतः कर्तव्य होगा कि वह ऐसी दशा में, जहां कि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत रहते हुए ऐसा करना सम्भव हो, पक्षकारों के बीच मेल-मिलाप कराने का पूर्ण प्रयास करे :

[1][परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसी कार्यवाही को लागू नहीं होगी जिसमें धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), खण्ड (iii), खण्ड (iv), खण्ड (v), खण्ड (vi) या खण्ड (vii) में विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी आधार पर अनुतोष चाहा गया है ।]

[2][(3) ऐसा मेल-मिलाप कराने में न्यायालय की सहायता के प्रयोजन के लिए न्यायालय, यदि पक्षकार ऐसा चाहते तो या यदि न्यायालय ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझे तो, कार्यवाहियों को पंद्रह दिन से अनधिक की युक्तियुक्त कालावधि के लिए स्थगित कर सकेगा और उस मामले को पक्षकारों द्वारा इस निमित्त नामित किसी व्यक्ति को या यदि पक्षकार कोई व्यक्ति नामित करने में असफल रहते हैं तो न्यायालय द्वारा नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को इन निदेशों के साथ निर्देशित कर सकेगा कि वह न्यायालय को इस बारे में रिपोर्ट दे कि मेल-मिलाप कराया जा सकता है या नहीं तथा करा दिया गया है या नहीं और न्यायालय कार्यवाही का निपटारा करने में ऐसी रिपोर्ट को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा ।

(4) ऐसे हर मामले में, जिसमें विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद द्वारा होता है, डिक्री पारित करने वाला न्यायालय हर पक्षकार को उसकी प्रति मुफ्त देगा ।]

[3][23क. **विवाह-विच्छेद और अन्य कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को अनुतोष** – विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी कार्यवाही में प्रत्यर्थी अर्जीदार के जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन के आधार पर चाहे गए अनुतोष का न केवल विरोध कर सकेगा बल्कि वह उस आधार पर इस अधिनियम के अधीन किसी अनुतोष के लिए प्रतिदावा भी कर सकेगा और यदि अर्जीदार का जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन साबित हो जाता है तो न्यायालय प्रत्यर्थी को इस अधिनियम के अधीन कोई ऐसा अनुतोष दे

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा जोडा गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 17 द्वारा अंतःस्थापित ।

सकेगा जिसके लिए वह उस दशा में हकदार होता या होती जिसमें उसने उस आधार पर ऐसे अनुतोष की मांग करते हुए अर्जी उपस्थापित की होती ।]

24. **वाद लम्बित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय** – जहां कि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत हो कि, यथास्थिति, पति या पत्नी की ऐसी कोई स्वतंत्र आय नहीं है जो उसके संभाल और कार्यवाही के आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त हो वहां वह पति या पत्नी के आवेदन पर प्रत्यर्थी को यह आदेश दे सकेगा कि अर्जीदार को कार्यवाही में होने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान में प्रतिमास ऐसी राशि संदत्त करे जो अर्जीदार की अपनी आय तथा प्रत्यर्थी की आय को देखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत होती हो :

[1][परन्तु कार्यवाही के व्ययों और कार्यवाही के दौरान ऐसी मासिक राशि के संदाय के लिए आवेदन को यथासंभव, यथास्थिति, पत्नी या पति पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

25. **स्थायी निर्वाहिका और भरण-पोषण** – (1) इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई भी न्यायालय, डिक्री पारित करने के समय या उसके पश्चात् किसी भी समय, यथास्थिति, पति या पत्नी द्वारा इस प्रयोजन से किए गए आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि प्रत्यर्थी [2]*** उसके भरण-पोषण और संभाल के लिए ऐसी कुल राशि या ऐसी मासिक अथवा कालिक राशि, जो प्रत्यर्थी की अपनी आय और अन्य सम्पत्ति को, यदि कोई हो आवेदक या आवेदिका की आय और अन्य सम्पत्ति को [3][तथा पक्षकारों के आचरण और मामले की अन्य परिस्थितियों को देखते हुए] न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, आवेदक या आवेदिका के जीवन-काल से अनधिक अवधि के लिए संदत्त करे और ऐसा कोई भी संदाय यदि यह करना आवश्यक हो तो, प्रत्यर्थी की स्थावर सम्पत्ति पर भार द्वारा प्रतिभूत किया जा सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् पक्षकारों में से किसी की भी परिस्थितियों में तब्दीली हो गई है तो वह किसी भी पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसी रीति से, जो

---

[1] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 8 द्वारा (24.9.2001 से) अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा "जब तक आवेदक या आवेदिका अविवाहित रहे तब तक" शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ऐसे किसी आदेश में फेरफार कर सकेगा या उसे उपान्तरित अथवा विखण्डित कर सकेगा ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उस पक्षकार ने जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है, पुनर्विवाह कर लिया है या यदि ऐसा पक्षकार पत्नी है तो वह पतिव्रता नहीं रह गई है, या यदि ऐसा पक्षकार पति है तो उसने किसी स्त्री के साथ विवाहबाह्य मैथुन किया है, [1][तो वह दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसे किसी आदेश को ऐसी रीति में, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे, परिवर्तित, उपांतरित या विखंडित कर सकेगा ।]

26. **अपत्यों की अभिरक्षा** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में न्यायालय अप्राप्तवय अपत्यों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में, यथासंभव उनकी इच्छा के अनुकूल, समय-समय ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबन्ध कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे और डिक्री के पश्चात् इस प्रयोजन से अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर ऐसे अपत्य की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में समय-समय पर ऐसे आदेश और उपबन्ध कर सकेगा जो ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने की कार्यवाही के लम्बित रहते ऐसी डिक्री या अन्तरिम आदेश द्वारा किए जा सकते थे और न्यायालय पूर्वतन किए गए ऐसे किसी आदेश या उपबंध को समय-समय पर प्रतिसंहृत या निलंबित कर सकेगा अथवा उसमें फेरफार कर सकेगा :

[2][परंतु ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए कार्यवाही लंबित रहने तक अप्राप्तवय अपत्यों के भरण-पोषण और शिक्षा की बाबत आवेदन को यथासंभव, प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

27. **सम्पत्ति का व्ययन** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में, न्यायालय ऐसी सम्पत्ति के बारे में, जो विवाह के अवसर पर या उनके आस-पास उपहार में दी गई हो और संयुक्ततः पति और पत्नी दोनों की हो, डिक्री में ऐसे उपबन्धित कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 9 द्वारा (24.9.2001 से) अंतःस्थापित ।

[1][28. **डिक्रियों और आदेशों की अपीलें** – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियां, उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उसी प्रकार अपीलनीय होंगी जैसे उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्री अपीलीय होती है और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यतः होती हैं ।

(2) धारा 25 या धारा 26 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा किए गए आदेश उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, तभी अपीलनीय होंगे जब वे अन्तरिम आदेश न हों और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यतः होती हैं ।

(3) केवल खर्चे के विषय में कोई अपील इस धारा के अधीन नहीं होगी ।

(4) इस धारा के अधीन हर अपील डिक्री या आदेश की तारीख से [2][नब्बे दिन की कालावधि] के अन्दर की जाएगी ।

28क. **डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्रियों और आदेशों का तत्समय प्रवर्तन किया जाता है ।]

व्यावृत्तियां और निरसन

29. **व्यावृत्तियां** – (1) इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व हिन्दुओं के बीच, अनुष्ठापित ऐसा विवाह, जो अन्यथा विधिमान्य हो, केवल इस तथ्य के कारण अविधिमान्य या कभी अविधिमान्य रहा हुआ न समझा जाएगा कि उसके पक्षकार एक ही गोत्र या प्रवर के थे अथवा, विभिन्न धर्मों, जातियों या एक ही जाति की विभिन्न उपजातियों के थे ।

(2) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात रूढ़ि से मान्यताप्राप्त या किसी विशेष अधिनियमिति द्वारा प्रदत्त किसी ऐसे अधिकार पर प्रभाव डालने

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 19 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 5 द्वारा (26.12.2003 से) "तीस दिन की कालावधि" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

वाली न समझी जाएगी जो किसी हिन्दू विवाह का वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विघटन अभिप्राप्त करने का अधिकार हो ।

(3) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन होने वाली किसी ऐसी कार्यवाही पर प्रभाव न डालेगी जो किसी विवाह को बातिल और शून्य घोषित करने के लिए या किसी विवाह को बातिल अथवा विघटित करने के लिए या न्यायिक पृथक्करण के लिए हो और इस अधिनियम के प्रारंभ पर लम्बित हो और ऐसी कोई भी कार्यवाही चलती रहेगी और अवधारित की जाएगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो ।

(4) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43) में अन्तर्विष्ट किसी ऐसे उपबन्ध पर प्रभाव न डालेगी जो हिन्दुओं के बीच उस अधिनियम के अधीन, इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व चाहे पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों के संबंध में हो ।

30. **[निरसन ।]** – रिपीलिंग एण्ड अमेंडिंग ऐक्ट, 1960 (1960 का 58) की धारा 2 और प्रथम अनुसूची द्वारा निरसित ।

cover iii

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. बी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

cover iv

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका**, **उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 195/- उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105